आध्यात्मिक उपन्यास

पलक झपकते

—सुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीकृष्ण - जन्मस्थान सेवा संस्थान

मथुरा—२८१००१ (उ० प्र०)

पलक झपकते

लेखक—

सुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रकाशक—

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा—२८१ ००१ (उ० प्र०)

मुद्रक—

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा—२८१ ००१

दूरभाष : ७८१

प्रकाशन तिथि :-
वामन द्वादशी, वि० सं० २०३८
सितम्बर, १९८१ ई०

प्रथमावृत्ति—२५००
मूल्य—४).००
चार रुपये

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है ।

पलक झपकते

अनुक्रमणिका

क्रम-मुक्ति

सगुण-संक्रमण

———

क्रम-मुक्ति

कीटु-मक

कन्हाई,

स्वयंको जो 'कालोऽस्मि' कह सका ,

वह नन्दलाल !

अतिशय दुर्धर्ष, अजेय ,

दुरतिक्रम काल !

सबसे बड़ा—

सबसे अजेय ,

भुवन-भयंकर ।

लगता होगा आपको—

अप्रीतिकर ।

किन्तु—

नव-नवका सर्जक सुमनोहर ,

वह भी केवल कलना कन्हाई की ,

कन्हाई ही—अपना यही गोपाल ।

अपनी बात–

'अमृतपुत्र' लिखते समय ही 'पलक झपकते' की बात मनमें आ गयी थी; क्योंकि सृष्टिमें तीन ही तत्त्व हैं—(१) देश, (२) काल, (३) वस्तु। इनमें-से वस्तु तो व्यक्त-तत्त्व है। इसके बिना देश या कालका वर्णन ही सम्भव नही। अतः वस्तुको तो सब वर्णनोंमें अनुस्यूत रहना है। 'अमृतपुत्र' देशका वर्णन करनेके लिए है। पुराणोंमें जो लोक-लोकान्तरोंका वर्णन है, उसे कुछ स्पष्ट करनेका प्रयास है वह।

देश, काल और वस्तु–तीन तत्त्व होकर भी अभिन्न हैं। वस्तु कभी (देशमें) होगी और कभी (कालमें) होगी। प्रलयमें वस्तु नहीं होती; किन्तु देश-काल तो होता ही है। 'अमृतपुत्र' में सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलिका जो वर्णन है, वह कालका ही वर्णन है और अमृतपुत्रकी एक झपकीमें–उसके स्वप्नकालमें ही प्रथम कल्पसे वर्तमान कल्पके इस मन्वन्तरके इस कलि-तकका वर्णन आ गया है।

'पलक झपकते' पुराणोंमें जो कालका वर्णन है, उसको अधिक स्पष्ट करनेके लिए है। पुराण जिस देश और कालका वर्णन करते है, वह मनुष्य-की कल्पनाके लिए भी अगम्य है।

'नाभिर्नभः (८.७.२७)—सम्पूर्ण आकाश भगवान् शेषशायीकी नाभि है।' यह भागवतका कहना है। नभ कितना बड़ा? विज्ञानका उत्तर सुन लीजिये—

प्रकाश एक सैकेण्डमें १,८६,००० मील चलता है। इस गतिसे एक वर्षमें प्रकाश जितनी दूरी चलेगा, उस दूरीको एक 'प्रकाश-वष' कहते हैं। आकाशमें जो आपको आकाशगङ्गा दिखलायी देती है, उसके कुछ तारोंकी दूरी पृथ्वीसे कई अरब प्रकाश-वर्ष हैं। यह आकाशगङ्गा भी एक नहीं है। विज्ञान कहता है कि 'एकके बाद दूसरी' शायद ये अनन्त हैं।' एक आकाशगङ्गासे दूसरी आकाशगङ्गाकी दूरी भी कई अरब प्रकाश-वर्ष है। अब यह सब जिस नभमें हैं, उस नभका विस्तार आपके मनमें आ पावेगा? यह अमित विस्तीर्ण नभ जिसकी नाभि है—उनका विस्तार कितना? कल्पनाकी भी गति नहीं।

यह बात जैसे देशके विषयमें है, वैसी ही कालके भी विषयमें है। मनुष्यके ४३,२०,००० वर्षोंका एक महायुग या चतुर्युगी होती है। ऐसे एक-हजार महायुगोंका ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माजीकी इतनी ही बड़ी

रात्रि होती है। ऐसे ३६० दिन और इतनी ही रात्रियोंका ब्रह्माका एक वर्ष। ब्रह्माजीकी आयु अपने वर्षसे सौ वर्ष है।

आप मानव-वर्षोंमें ब्रह्माकी आयु निकाल पावेंगे? प्रयत्न करें तो कदाचित् करलें; किन्तु काल यहीं तो समाप्त नहीं होता। एक ब्रह्माकी पूरी आयु विष्णुका एक दिन। उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि। वैसे ३६० दिन-रातका उनका एक वर्ष और अपने सौ-वर्षका उनका जीवन।

इन (एक ब्रह्माण्डके पालक) विष्णुकी पूरी आयु (एक ब्रह्माण्डके संहारक) रुद्रका एक दिन होता है। उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि। उनके दिन-रात ३६० बार बीतें तो उनका एक वर्ष। उन्हें अपने वर्षसे सौ-वर्षका जीवन मिला।

भगवान् नारायण, परम शिव, साकेताधीश या गोलोकविहारी—आप सगुण-साकार परम तत्त्वको जो कुछ भी नाम दें, उनकी पलक उठती है तो एक रुद्र उत्पन्न होते हैं और पलक गिरती है तो एक रुद्र मर जाते हैं। जैसे देशकी दृष्टिसे 'नाभिर्नभः' वे अचिन्त्य हैं, कालकी दृष्टिसे भी वे 'मन-बुद्धि' से परे हैं।

पुराण केवल इस अचिन्त्य कालकी ही बात नहीं करते, वे कालका विभाजन भी बतलाते हैं। जैसे पितरोंका एक दिन हमारे एक पक्ष (कृष्णपक्ष) का और एक पक्ष (शुक्ल) की उनकी रात्रि होती है, देवताओं-का दिन हमारे छः महीरे (उत्तरायण) का और छः महीने (दक्षिणायन) की उनकी रात्रि।

ब्रह्माके एक दिनमें १४ मन्वन्तर होते हैं। अतः मनुका एक दिन मानवके लगभग १२,००० वर्षके बराबर होता है।

'पलक झपकते' उपन्यास है। इसमें कालको समझानेकी चेष्टा की गयी है। साथ ही मनुष्यको क्रम-मुक्तिको स्पष्ट किया गया है।

जो जन्म-मरणके चक्रमें पड़े हैं, वे तो वर्णनके विषय नहीं और जो जीवन्मुक्त या विदेहमुक्त हो जाते हैं. उनका आगे वर्णनको कुछ रहता नहीं। जो मानव-जीवनकी समाप्तिके साथ मुक्त भी नहीं हुए और जन्म-मरणके चक्रमें भी नहीं रहे, वे ही यहाँ वर्णनके विषय हैं।

रुचि-भेदसे ऐसे महापुरुष दो प्रकारके होते हैं—(१) निर्गुणवादी (२) सगुणस्नेही। इन दोनोंकी क्रम-मुक्तिके भी दो ढंग हैं। श्रीमद्भागवतकी क्रम-मुक्तिको लेकर मैंने ये दोनों ढंग स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है।

उपन्यास ही हैं—(१) प्रभु आवत, (२) राक्षसराज, (३) शत्रुघ्न-कुमारकी आत्मकथा, (४) आञ्जनेयकी आत्मकथा और (५) वे मिलेंगे; किन्तु ये इतने पौराणिक चरित हैं कि पाठकोंने इन्हें उपन्यास स्वीकार ही नहीं किया।

ठीक पौराणिक उपन्यास कहनेयोग्य 'अमृतपुत्र' और अब यह 'पलक झपकते'।

आपको यह कैसा लगेगा, कह नहीं सकता; किन्तु इनसे मेरा मनो-विनोद हुआ, कुछ कन्हाईकी अचिन्त्य शक्तिका चिन्तन हुआ, इतना पर्याप्त है।

—सुदर्शनसिंह

श्रीकृष्ण जन्म स्थान, मथुरा.
दीपावली—२०३६ वि०

☆

उपक्रम—

अमित और अनन्त मित्र हैं। कबसे हैं, यह विवेचन अनावश्यक है। किसे पता होता है कि उसका किससे कितने जन्मोंका सम्बन्ध है। जीवनमें न जाने कितने लोग मिलते हैं, साथ रहते हैं; किन्तु कोई होते हैं, जो मिलते ही घनिष्ठ हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है ? पूर्व-संस्कारको माने बिना दूसरा कोई समुचित कारण नहीं। अमित और अनन्त भी कुछ सामान्य क्रममें मिले और घनिष्ठ हो गये। दोनों मित्र हैं, अच्छे घनिष्ठ मित्र !

सृष्टिकर्ताको सनक है कि वह दो हाथोंकी अँगुलियोंके चिह्न भी एक समान नहीं बनाता। अतः दो मित्रोंमें सर्वथा समानता कैसे सम्भव है, वैसे दोनोंमें बहुत समानताएँ हैं। आप जानते ही हैं कि मित्रता सर्वथा विषमतामें निभा नहीं करती।

'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्।'

'शील और व्यसन समान हों तो मित्रतामें आकृतिकी विषमता बाधक नहीं बना करती।' किसी हब्शी और गोरेमें मित्रता हो ही नहीं सकती, ऐसा कोई नियम नहीं है। यहाँ अमित और अनन्तमें ऐसी कोई बड़ी विषमता भी नहीं है। केवल यह कि अमित दुहरे शरीरका था और आगे जाकर स्थूल हो गया। अनन्त कृशकाय था; किन्तु वह भी स्थूल नहीं हुआ तो कृश भी नहीं रहा और रंगका अन्तर तो अत्यल्प।

अवश्य एक अन्तर था। अनन्त कंगातप्राय था और अमित अच्छा खाता-पीता। लेकिन यह ऐसा अन्तर नहीं था, जो मैत्रीमें व्याघात बनता। यह अन्तर भी टिका नहीं। अमित सम्पन्न हो गया तो अनन्त भी अभावग्रस्त नहीं रहा।

सख्यके लिए जैसे शरीर-रचना, रंगका अन्तर नगण्य है, सम्पत्तिका तारतम्य एक बड़ी सीमातक वैसा ही उपेक्षणीय है। समानता शील और व्यसनकी। दोनों प्रतिभाशाली हैं। दोनोंकी अध्ययनमें रुचि और दोनों पारमार्थिक अभ्युदयके प्रेमी थे। दोनोंकी मैत्रीके लिए इतना पर्याप्त था।

सृष्टिकर्ता स्थूल समानताएँ बनानेका अभ्यासी है तो सूक्ष्ममें अनन्त विषमताओंके सृजनका भी व्यसनी है। अमित और अनन्तमें जहाँ बाह्य बहुत समानताएँ हैं, विषमताएँ भी बहुत अधिक हैं। ये बाह्य और आन्तर दोनों हैं।

अमित सुख, सम्पत्ति, सुयशका आरम्भसे आकांक्षी रहा। इनको प्राप्तिके प्रयत्नमें कभी शिथिलता नहीं आने दी और इनकी प्राप्ति उसे हुई। अवश्य एक सीमातक हुई; क्योंकि संसारकी ही सोमा है तो इसके पदार्थ असीम कैसे होंगे। संसारमें गुण्डे, चोर आदिके भी कुछ अनुयायी होते हैं और प्रसिद्धतम महापुरुषोंसे अनजान लोगोंकी संख्या भी कम नहीं होती। सुख, सम्पत्ति और सुयशकी सीमा है। इनके भी क्षेत्र होते हैं। व्यक्ति अपने क्षेत्रमें ही इन्हें प्राप्त करता है। अमितने अपने क्षेत्रमें अच्छी बड़ी सफलता प्राप्त की है।

अनन्तको सुख, सम्पत्ति तथा सुयश न चाहते हों—ऐसी कोई बात नहीं हैं। अवश्य ही उसने इनकी कभी अपेक्षा नहीं की। इनके लिए प्रयत्न-शील नहीं रहा; लेकिन अपने क्षेत्रमें उसे भी इनका अभाव नहीं हुआ। अवश्य सम्पत्तिके संग्रहसे भड़कनेके कारण वह कभी धनी नहीं बना।

जहाँतक लौकिक जीवनकी बात है, अमितके पास परिवार था और जब परिवारसे पार्थक्यका प्रश्न आया, वह बढ़ा—बढ़ता गया। व्यक्तियोंसे वह उसी प्रकार घिरता गया, जैसे सामग्रीसे। इनके प्रति अनास्था तो कभी थी नहीं। आवश्यक भी नहीं थी।

अनन्त एकाकी था, कंगालप्राय था; लेकिन अद्भुत अक्खड़ था। उसे निरपेक्ष बने रहनेकी सनक। अनेक परिवार उसे अपना मानते हैं; किन्तु है वह एकाकी ही। उसे सामग्रीका अभाव नहीं; किन्तु संग्रहका सिर-दर्द लेना नहीं चाहता। इसी स्वभावने उसे सुखी, निश्चिन्त, निभय किया है—यह उसकी मान्यता है।

बात बाह्य जीवनकी नहीं की जानी चाहिये; क्योंकि दोनोंकी परम-परिणतिकी चर्चा करनी है। परम-परिणति व्यक्तिकी आन्तरिक अवस्था, निष्ठापर निर्भर है।

अमित निवृत्तिमार्गका प्रवक्ता-पोषक, उद्घोषक है; किन्तु व्यावहारिक जीवनमें अत्यन्त प्रवृत्तिपटु। उसे विश्राम ही कम प्राप्त होता है। व्यवहारमें उसे अनिपुण कहनेका साहस किसीने नहीं किया। वह व्यवहारमें भी प्रशंस-नीय है। उदार, सहनशील, दयालु, आश्रयदाता और अनेकोंका पोषक। अवश्य ये सब सद्गुण हैं—समाज-प्रशंसित सद्गुण हैं; किन्तु इनका क्षेत्र निवृत्ति नहीं है, यह विचारवान् समझ सकता है।

अनन्त एकाको है। अपरिग्रहप्रिय है। प्रायः निरपेक्ष रहता है; किन्तु रुक्ष और अक्खड़। वह स्वयं कहता है—'जिसने लोक बनाया, लोककी

चिन्ता वह करे।' अतः परोपकार, लोकहितकी सोचता ही नहीं। लेकिन अद्भुत बात यह है कि निवृत्तिकी निन्दा भले न करे, बात प्रवृत्तिकी, कर्तव्य-पालनकी करता है। कोई घर-द्वार छोड़कर बाबाजी बने, यह इसे रुचता नहीं।

स्वभावके समान ही दोनोंकी निष्ठाओंमें भी बहुत अन्तर है। अमित-की निष्ठा निर्गुण ब्रह्मवादमें है और अनन्त सगुण-साकारको सँभालनेमें आस्था रखता है।

ऐसा नहीं है कि अमितने आराधना न की हो, अथवा भक्तिशास्त्रसे अपरिचित हो। उसने आरम्भ ही आराधनासे किया था और उसका कहना है कि उसकी उपासना सगुण-साकारके साक्षात्कारपर्यन्त पूर्ण हुई। भक्तिशास्त्र-का वह माना हुआ विद्वान् है, मर्मज्ञ है; लेकिन उसकी आस्था निर्गुण अद्वयतत्त्वमें है। इसे स्पष्ट स्वीकार करनेमें उसे संकोच नहीं। उसने जमकर सत्सङ्ग किया है। अनेक सुप्रसिद्ध संतोंका सांनिध्य पाया है। उनका स्नेह-भाजन रहा है।

ऐसा भी नहीं है कि अनन्त निर्गुण ब्रह्मवादसे अपरिचित हो। वह निर्गुण-तत्त्वको जानता-समझता है। आप उसके निर्गुण ज्ञानमें त्रुटि नहीं बतला सकेंगे। वह अद्वैत-वेदान्तका विद्वान् भले न कहा जाय, अच्छा अध्येता है।

उलटी बात—आराधना, साधना, सत्सङ्ग अनन्तने ही अत्यल्प किये हैं। सत्सङ्ग तो उसे कुछ मिला भी तो अमितके साथके कारण मिला और वहाँ भी वह मूक श्रोता ही प्रायः बना रहा। उसमें जैसे जिज्ञासा नामका तत्त्व ही नहीं था।

अनन्तकी रुचि अद्भुत है। वह अपने विवेचन स्वयं करता है। अमितके समान उसे शास्त्रोंपर आस्था तो है; किन्तु अमित परम्पराप्राप्त व्याख्याका विद्वान् है और अनन्त व्याख्याएँ पढ़ना ही नहीं चाहता।

'जिसके कोई नहीं होता, कन्हाई उसका होता है।' पता नहीं, कहाँ सुन लिया था और अनन्तने गाँठ बाँध ली। वह एकाकी क्या हुआ, उसने सब दायित्व ही कन्हाईके सिर पटक दिया। अब लोकमें कुछ आवश्यक हो तो कन्हाई करे और परलोकके लिए आवश्यक हो तो वह भी कन्हाई करे।

'कन्हाई कर लेगा!' अनन्तके एकाकी भड़कते रहनेके स्वभावने उसकी यह धारणा बढ़ा दी। उसे जो सुविधा-सम्मान मिला या मिलता है, वह सब उसे कन्हाईका दिया मान लेता है।

असुविधा, असम्मान, रोग-अभाव जीवनमें न आवें, यह तो हुआ नहीं करता; किन्तु कोई इनपर ध्यान ही न दे, इनको नगण्य मान ले तो किया क्या जा सकता है। अनन्त इन-सबको नगण्य मानता है।

'कन्हाई कर लेगा।' लोक-जीवनकी व्यवस्था ही नहीं छोड़ दी, पारलौकिक चिन्ता भी छोड़ दी। अतः साधन भी नहीं किये। इसी सनकमें सत्सङ्गसे भी उदासीनप्राय रहा। जैसे दूसरे किसीसे कुछ लेना स्वीकार नहीं, सीखना भी स्वीकार नहीं।

व्यवहारमें ऐसा व्यक्ति अपटु तो होगा ही। साधनकी बात प्रत्यक्ष जाँचसे परे है। केवल यह कह सकते हैं कि अनन्त निर्भय, निश्चिन्त एवं निरपेक्ष हो गया अपनी इस 'कन्हाई करेगा' की सनकको लेकर।

'प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।' (गीता १३-२९)

मनुष्य कुछ करता है, यह उसका मिथ्या अहंकार है। निर्गुण-तत्त्व तो अद्वय, निर्विकार है। उसमें कुछ होना, बनना-बिगड़ना सम्भव नहीं। विचार सब जगत्को लेकर किया जाता है। वेदान्तके दार्शनिक शब्दोंमें प्रतीत-सत्ता ही विचारका क्षेत्र है। इस प्रतीत-सत्ता अर्थात् संसारका कोई कर्ता है, संचालक है, यह आस्तिक मान्यता है। वही जिसको जब, जैसा बना देता है, वह वैसा हो जाता है।

निर्गुण ब्रह्मवाद भी मानता है कि तत्त्वज्ञान दृश्यमें अथवा अन्तः-करणमें परिवर्तन नहीं करता। अतः केवल बौद्धिक निर्गुण-तत्त्वका ज्ञान किसीको जीवन्मुक्त या विदेहमुक्त नहीं बना देगा। जीवन्मुक्त या विदेहमुक्त ब्रह्मको तो होना नहीं है। होना है अन्तःकरणको और अन्तःकरणका आवा-गमन उसमें स्थित राग-द्वेषके कारण होता है। अविद्या-नाश ही तब माना जाना चाहिये, जब राग-द्वेष एवं अभिनिवेश नष्ट हो गये हों।

'जीव' कहना आपको अप्रिय हो तो आभास-चेतनयुक्त अन्तःकरण कहिये ! इसका आवागमन होगा इसमें जो आसक्ति-द्वेष हैं उसके अनुसार। जड़भरतके समान और भी उदाहरण पुराणोंमें हैं, जिनमें आसक्ति या पाप शेष रहनेपर तत्त्वज्ञान होनेपर भी वे मोक्षके प्रतिबन्धक बने और उनका पुनर्जन्म हुआ।

व्यक्तिका पुनर्जन्म वह होगा, जैसी उसकी अन्तिम भावना हो, यह नियम है। अमितकी आसक्ति अपने स्थानमें; अतः यह आसक्ति प्रतिबन्धक तो बनती ही थी। उसकी आसक्ति स्थान, सम्मान, सुखमें; लेकिन उसने

आराधना की पहले। उसने सत्सङ्ग किया। उसकी निष्ठा निर्गुण ब्रह्मवादमें। यह सब व्यर्थ तो चला नहीं जाना था।

अमितने अपने शास्त्रज्ञान एवं एकाग्रताका भी उपयोग किया अनुष्ठान करने-कराने तथा अलौकिक प्रभाव प्रकट करनेमें। यह सिद्धिका उपयोग और नियम है कि एक बार भी जान-बूझकर सिद्धिका उपयोग किया जाय तो देहान्तके पश्चात् सिद्धलोक मिलता है। सद्योमुक्तिका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।

श्रीमद्भागवतके द्वितीय स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें जिस क्रममुक्तिका वर्णन है, वह केवल ऐच्छिक नहीं है। उसी क्रममुक्तिके मार्गसे सिद्धलोक-प्राप्त मुक्ताधिकारियोंको भी जाना पड़ता है। अतः अमितको यह पथ प्राप्त हुआ। इसका वर्णन प्रथम भागमें—'क्रममुक्ति खण्ड' में आगे विस्तारसे दिया जा रहा है।

अनन्तमें भी अनेक अपूर्णताएँ रह गयीं। उसने न साधन किये, न सत्सङ्ग। उपासना भी उसने नहीं की। उसे भी जाना तो क्रमसे ही चाहिये। अवश्य उसने छोड़ रखा—'कन्हाई करेगा।' अतः उसके सम्बन्धमें कन्हाईको ही करना ठहरा।

पता नहीं क्यों, अन्त समीप आया तो उसे अनेक पितर-मनु-देवतादि दीखने लगे। सब जैसे उससे आग्रह करते हों—'एक दिन हमारा आतिथ्य स्वीकार करनेकी कृपा करें!'

'अच्छी बात।' जो जीवनभर भटकनेवाला यात्री रहा, जिसे यात्रा-कार्यक्रम बनानेमें कभी कठिनाई नहीं हुई, उसे इन आग्रहोंको अस्वीकार करना अच्छा नहीं लगा। उसने सबको स्वीकृति दे दी।

'कन्हाई तो अपना है।' अनन्तको लगा कि उसे अपने श्यामतक पहुँचनेकी शीघ्रता नहीं है। वह सबका आतिथ्य स्वीकार करता जा सकता है। सब केवल एक-एक दिन ही तो उसे रोकना चाहते हैं।

कौन कह सकता है कि अनन्तकी इस यात्राकी व्यवस्था भी उसके कन्हाईने ही नहीं की होगी। वह तो जब पहुँचा, उसने पूछा था—'मुझे मार्गमें कितना समय लगा?'

'केवल इतना।' उसके नटखट सखाने अपनी बड़ी पलकें एक बार झपका दीं।

——

प्रलयके समय–

मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक प्राणीके लिए अपनी मृत्यु ही प्रलय है; किन्तु सम्पूर्ण सृष्टिकी भी प्रलय होती ही है। प्राणी अपनी मृत्युमें स्वयं कोई निर्णय नहीं कर पाता, प्रलयमें तो निर्णय कैसे करेगा। लेकिन संसारमें समर्थ पुरुष भी होते ही हैं। ऐसे ही समर्थ नहीं, जिनको स्वेच्छा-मृत्यु कहा जाता है, ऐसे समर्थ भी, जिनको प्रलयके समय भी बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है।

बात प्रलयकी नहीं, महाप्रलयकी है। प्रलय तो सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके प्रत्येक दिनके अन्तमें होती है। ब्रह्माजी जब दिनान्तमें सोनेको होते हैं, अपना सब कार्य समेट देते हैं; लेकिन ब्रह्माजी बने तो रहते ही हैं। उनके शयनके समय भी ब्रह्मलोक बना रहता है। महर्लोक, जनलोक और तपलोक भी बने रहते हैं। केवल भूलोक, भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) और स्वर्ग नष्ट होते हैं। ये जलमग्न हो जाते हैं।

ऐसे ही एक प्रलयके समय भृगु-प्रभृति महर्षियोंके साथ अमित भी ब्रह्मलोक पहुँच गया था; किन्तु वहाँ पहुँचकर पता लगा कि यह सामान्य प्रलय नहीं है। यह तो महाप्रलय है। सम्पूर्ण समष्टिका लय होता है। स्वयं सृष्टिकर्ताकी आयु समाप्त हो गयी है तो उनकी संतान कैसे बची रह सकती है। सभी सिद्धेश्वर व्यस्त थे। सबको आगामी सृष्टिपर धरापर उतरना था और अपना स्थान लेना था। इतनेपर भी महर्षि भृगुने अमितको अवसर दिया कि वह अपनी शङ्काका समाधान कर ले।

'मुझे महर्लोक ही क्यों आना पड़ा ?' अमितने प्रश्न किया।

'इसलिये कि तुम्हारी भोगासक्ति और यशोलिप्सा दूर नहीं हुई थी।' भृगुजीने दो-टूक बातकी—'तुम जानते हो कि धरापर मानव-देहके त्यागका अन्तिम क्षण कितना महत्वपूर्ण है। तुम भूमि-भवनका चिन्तन करते देहसे निकले। सामान्य मानव होता तो कर्मानुसार उसी भूमिमें–भवनमें पिपीलिका, श्वान, मूषकादि कोई प्राणी या तृण-तरु हो जाता; किन्तु तुमने संचित भस्म कर लिया था। तुम्हारी उपासना एवं उपरतिने तुम्हें सिद्धपद दिया; क्योंकि इसे तो तुम जीवनमें ही सिद्धिका प्रयोग करके स्वीकार कर चुके थे।'

अमित जानता-समझता था कि श्रुति जिस तत्त्वज्ञानीके सम्बन्धमें कहती है कि 'उसके प्राण शरीरसे बाहर निकलकर कहीं जाते नहीं, वहीं समष्टिमें लीन हो जाते हैं' वह देहासक्तिके संस्कारसे सर्वथा रहित महापुरुष है। उसीके लिए कहा गया है कि जैसे मदिरा-मत्तको अपने पहने वस्त्रोंका पता नहीं होता; वैसे ही उस महापुरुषको शरीरका स्मरण नहीं रहता।

अमितको यह बतलाना आवश्यक नहीं था कि यथेच्छा देहासक्तिका ही परिष्कृत रूप है; क्योंकि नाम देहका ही हुआ करता है।

'अब हम-सब क्या करेंगे ?' अमितको इस समय अपनी ही चिन्ता थी।

'जबतक दूसरी सृष्टिका समय न आवे, हम सभी सृष्टिकर्तासे एक होकर नारायणके उदरमें सोते रहेंगे।' भृगुजीने कहा—'ब्रह्माजीकी तो आयु पूरी हो गयी; लेकिन आगामी सृष्टिमें इन सिद्धेश्वरोंमें-से ही तो उनकी शक्तिके अनुसार उनमेंसे पृथ्वी, पर्वत, सरिताएँ, सागर, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि बनने हैं।'

'यह पुनर्जन्म नहीं है ?' अमितके मनसे अभी यह बात गयी नहीं थी कि उसका तत्त्वज्ञान उसे पुनर्जन्मसे परित्राण दे चुका है।

'पुनर्जन्म तो तुम्हें तभी प्राप्त हो गया, जब तुम इस सिद्धदेहमें आये।' महर्षि भृगुने समझाया—'लेकिन सामान्य रूपसे पुनर्जन्म-शब्दका प्रयोग प्राणियोंका कोई देह प्राप्त करना होता है। पञ्चभूतादि तत्त्व बनना जन्म नहीं माना जाता।'

'यह तो जड़त्वकी प्राप्ति है।' अमित खिन्न हो गया।

'तुम क्षणजीवी कीट होना चाहोगे ?' महर्षिने झिड़क दिया—'जानते हो कि जड़ कोई तत्त्व नहीं है। जड़त्व केवल भ्रम है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पर्वत, सागर, सरिताएँ—सब देवता नहीं हैं ? जड़त्वका भ्रम तो उनके स्थूल रूपको लेकर होता है, जो उनका शरीर है।'

अमितने पढ़ा तो है कि पृथ्वी आदि सब तत्त्व, सूर्य-चन्द्रादि, पर्वत-सरिता-सागर-प्रभृति मनुष्योंके समष्टिगत कर्मसे निर्मित होते हैं; किन्तु उनके अधिदेवताओंकी बात उसने कभी सोची नहीं थी।

'आप अनुग्रह करके सूचित कर देंगे कि आगामी सृष्टिमें मुझे कौन-सा तत्त्व बनना है !' बहुत विनम्रतापूर्वक पूछा अमितने।

'तत्त्व बननेका क्रम तो पृथ्वीसे ही प्रारम्भ होता है; किन्तु यह सौभाग्य तो किसी एक ही सिद्धेश्वरश्रेष्ठको मिल सकता है।' महर्षिने दो क्षण ध्यान करके कहा—'तुम्हें तो एक साधारण पर्वत-शिखर बनना है।'

'प्रलय-पर्यन्त साधारण पर्वत-शिखर !' अमित स्वयं ही हताश स्वरमें बोला।

''खिन्न होनेका कारण नहीं है।' महर्षि भृगुने समझाया—'केवल मूल-तत्त्वोंकी आयु प्रलय-पर्यन्त होती है। पर्वत-शिखर मध्यमें भी टूटते-बनते हैं। सरिता-सागर आदिकी भी मध्यमें समाप्ति, अथवा निर्माण होता है; किन्तु इनके अधिदेवता दूसरा वैसा ही कोई पिण्ड स्वीकार कर लेते हैं। तत्त्वान्तर तो प्रलयके पश्चात् नवीन सृष्टिमें ही सम्भव होता है; लेकिन इस कोटिके अधिदेवता 'कारक' होते हैं। उन्हें जीवोंके समान कर्म-बन्धन नहीं प्राप्त होता।''

'पृथ्वी-तत्त्व बननेका साधन ?' अमित अभीतक अपने असमंजससे उबर नहीं सका था।

'अब तो कोई साधन सम्भव नहीं। साधन सब मनुष्यके लिए हैं और अब मनुष्य-जीवन प्राप्त करनेका कोई क्रम तुम्हारे लिए सुलभ नहीं' महर्षि भृगुने कहा—'तुम्हारे पूर्व-साधन व्यर्थ नहीं गये। अतः तुम क्रम-मुक्तिके मार्गपर आरूढ़ हो। इसमें कालकी महत्ता नहीं है।'

'मैं अपने सम्बन्धमें नहीं पूछ रहा था।' अमितके मनमें सचमुच जिज्ञासा थी।

'मानव-जन्ममें जो साधन-सम्पन्न होकर शुद्धान्तःकरण हो गया है और योगाभ्यासके दृढ़ अभ्याससे जिसे देह-त्यागकी शक्ति प्राप्त हो गयी है, ऐसे योगसिद्धके लिए साधन हैं।'—महर्षि भृगुने सुनाना प्रारम्भ किया।

'उसे जब पता लग जाय कि देह-त्यागका समय आ गया, प्रारब्ध समाप्त हो रहा है, तब कब शरीर छोड़ना या कहाँ छोड़ना, इसका कोई आग्रह न रखे। ये आग्रह अपने साधन तथा आराध्यकी शक्तिपर अविश्वास अथवा संदेहके कारण उत्पन्न होते हैं।

'स्थिर-दृढ़ आसनपर सुखपूर्वक बैठ जाय। मनके द्वारा (प्राणायामके द्वारा नहीं) प्राणवायुपर अधिकार कर ले। मनको बुद्धिके नियन्त्रणमें रखे

और बुद्धि क्षेत्रज्ञ-तत्त्वका चिन्तन करे। वह क्षेत्रज्ञ व्यष्टि नहीं, अद्वितीय परमतत्त्व है। उसीमें स्थित हो जाय।

'यह स्थिति जब स्थिर हो जाय, तब अपने पैरके वामगुल्फसे मलद्वार और दक्षिणगुल्फ (एड़ी) से शिश्नको दृढ़तापूर्वक बंद कर दे। अब अपानवायु-को मूलाधारसे स्वाधिष्ठानमें ले आवे। वहाँसे नाभिमें और वहाँसे हृदयचक्रमें लाकर प्राणवायुमें मिला दे। वहाँसे उदानवायुके साथ कण्ठचक्रमें लावे। वहाँसे भ्रूमध्यमें लावे। यह सब बिना उतावलीके धीरे-धीरे करे।

'ऊपरके द्वार—कर्ण, नासिका, नेत्र और मुखको दोनों हाथोंकी अँगुलियोंसे बन्द करके आधे मुहूर्त (लगभग आधे घण्टे) इसी स्थितिमें रहे। इसके पश्चात् ब्रह्मरन्ध्रसे मूर्धा-भेदन करके प्राणको निकल जाने दे।

'यदि देवादि लोकोंमें न जानेकी इच्छा हो तो इस प्रकार प्राणत्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है; किन्तु यदि कुछ भी भोग-वासना शेष हो तो मन तथा इन्द्रियोंको ध्यानके द्वारा प्राणके साथ करके देह-त्याग करे।

'इस प्रकार जो देह-त्याग नहीं करते; किन्तु आराधक या तत्त्वचिन्तक रहे हैं, उनको भी सिद्धदेह मिल जाता है। किंचित् वासना शेष रहे तो सिद्ध-देह प्राप्त होता है। वायुप्राय यह ज्योतिर्देह त्रिलोकीमें बाहर तथा प्राणियोंके अन्तःकरणमें भी प्रवेश करके यथेच्छ कार्य कर सकता है।

'तुम्हें अनुभव ही है कि महर्लोक तथा उसके ऊपरके जनलोक, तपो-लोक और इस सत्यलोक (ब्रह्मलोक) में किसीको कोई कष्ट नहीं होता। यहाँ केवल एक कष्ट बराबर बना रहता है। वह है—दयाजन्य दुःख। संसारके प्राणी दुरन्त-दुःखमें निरन्तर संतप्त हो रहे हैं, यह देखते रहना क्या कम क्लेशप्रद है?'

'मैं कुछ भी बनकर, कितना भी कष्ट सहकर इन अज्ञानी असहाय प्राणियोंकी कोई सहायता कर सकता!' अमितने अपने हृदयकी बात कही।

'हम-सबकी यही आन्तरिक अभिलाषा है।' महर्षि भृगुने कहा—'महाप्रलयमें संसार ध्वस्त हो रहा है। वहाँके असह्य तापसे महर्लोक ही नहीं, तपोलोकतक संतप्त हो रहा है। इन लोकोंमें महाप्रलयकी इस दारुण अग्निके तापसे रहना सम्भव न होनेके कारण ही तो हम-सब यहाँ सृष्टि-

कर्ताके समीप आ गये हैं। अब हम-सबके उनमें प्रवेश करनेका काल समीप आ गया।'

'हम प्रलयकाल-पर्यन्त सुषुप्त रहेंगे।' अमितको इसमें आपत्ति नहीं थी। होती भी तो निवारणका उपाय नहीं था। निरुपाय स्थिति विवेकीको निश्चिन्त कर देती है। अतः उसने कहा—'प्रलयकाल तो निष्क्रिय शून्यके समान अप्रतर्क्य है। उसके पश्चात् ?'

'पृथ्वीपर इस सृष्टिकालमें जिन महायोगीने ऊपर बतलाये क्रमसे देह-त्याग किया और मन-इन्द्रियोंके साथ आये, उनसे तुम अपरिचित नहीं हो।' महर्षि भृगुने परिचय दे दिया—'वे योगेश्वर असित सर्वप्रथम जाग्रत् होंगे। उन्हें धराका आधिदैवत प्राप्त हो जायगा, तब अन्य उनके आश्रयसे अग्नि-जल, वायु-आकाश, पर्वत-सिन्धु-सरिता होनेका अवसर पा सकेंगे। सूर्यादि ग्रह-नक्षत्रोंका भी आविर्भाव यथाक्रम होना है।'

महर्लोकसे सत्यलोकतक दूसरा जीवन तो है नहीं, केवल सत्सङ्ग-जीवनचर्या है वहाँ। भोग या भोगेच्छा नहीं तो क्लेश-भाव भी नहीं; किन्तु इस सत्सङ्गको अब समाप्त होना था। भगवान् काल सत्यलोकको भी इस महाप्रलयमें विलीन कर देनेवाले थे।

—

पारमेष्ठ्य—

अन्तिम समयमें भी ब्रह्माजीको अवकाश नहीं होता। अतः उनको सृष्टिमें प्राणी यदि मरते-मरते भी संसारकी ही चिन्ता करता रहता है तो आश्चर्य क्या ! आश्चर्य तो यही है कि कुछ जीवनमें ही इस चिन्तासे छूट जाते हैं; क्योंकि उनमें जो अकारण कृपालु अन्तर्यामी है, वह अचानक अनुग्रह करके उन्हें अपनालेनेको आतुर हो उठता है। क्यों ऐसा होता है, मत पूछिये; क्योंकि उस लीलामयकी इच्छा सदा अगम्य रहती है।

दो परार्ध बीतनेपर जब ब्रह्माजी अपने परिमाणके सौ वर्ष पूरे कर लेते हैं, उस समय उनकी आयु पूरी होती है। उनकी सृष्टिमें महाप्रलय होती है; किन्तु महाप्रलयसे पूर्व-क्षणतक ब्रह्माजीको व्यस्त रहना पड़ता है। उन्हें तब भी आगामी सृष्टिको योजना बनानेकी धुन रहती है।

ब्रह्मलोक पहुँचनेवाले चार प्रकारके होते हैं—(१) आगन्तुक लोग। ये कभी अचानक आ जाते हैं सृष्टिकर्तासे कुछ कहने या पूछनेके लिए। जैसे महाराज रेवत अपनी कन्या रेवतीके लिए योग्य वर पूछने कभी आ गये थे। देवता, ऋषि आदि कोई इस प्रकार आ जाते हैं। इन्हें ब्रह्मलोकमें बसना नहीं होता। अपना प्रयोजन पूरा करके ये चले जाते हैं।

(२) परिकर—इनमें ब्रह्माजीके पुत्र तथा सेवकादि भी होते हैं। सरस्वती, सावित्री, गायत्री भी हैं और कुछ विशिष्ट अप्सराएँ, गन्धर्व भी। इन्हें ब्रह्मलोकसे बाहर भी जाना रहता है; किन्तु इनका निवास ब्रह्मलोक है। इनमें निवास करनेवाले अनेक दिव्यलोकोंतक जाते रहते हैं। देवर्षि नारद, सनकादि कुमार-जैसे ये विशिष्ट परम स्वतन्त्र। ये श्रीहरिके किसी लोकमें चले जायँगे या ब्रह्माजीसे महाप्रलयके समय एकत्व स्वीकार करेंगे, दोनों इनकी इच्छापर निर्भर है। शेष परिकरको सृष्टिकर्ता अपनेमें एक कर लेते हैं।

(३) पुण्यात्मा जीव—जिन मनुष्योंका पुण्य इतना अधिक है कि स्वर्गादिमें भी उसका भोग सम्भव नहीं, वे ब्रह्मलोक आते है। ब्रह्माजी अपने प्रत्येक दिन (कल्प) के अन्तमें उन्हें अपने भीतर प्रसुप्त कर लेते हैं और जागनेपर उन्हें उनके कर्मानुसार योनिमें भेज देते हैं। द्विपरार्धके अन्तिम

दिन प्रायः ऐसे जीव ब्रह्मलोक आते ही नहीं। अतः इनकी चिन्ता ब्रह्माजीको अन्तिम क्षणोंमें नहीं करनी पड़ती।

(४) ऐसे अधिकारी ब्रह्मलोक आ जाते हैं, जिन्हें दुबारा जन्म नहीं लेना होता। मानव-शरीरमें रहते उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया; किन्तु केवल परोक्षज्ञान हुआ; अविद्या-निवृत्ति नहीं हुई। अन्तःकरणमें कोई वासना थी नहीं। भलतः उन्हें कोई जन्म भी कर्म-नियन्ता दे नहीं सकते थे। ब्रह्माजी अपने प्रत्येक दिनान्त (कल्पान्त) में उन्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश करके मुक्त कर देते हैं। महाप्रलयके समय, अपने जीवनके अन्तिभ क्षणमें भी यह कार्य सृष्टिकर्ताको करना पड़ता है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी महानुभाव ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं, जिनका न अन्तःकरण शुद्ध है, न वे ब्रह्मलोकके अधिकारी हैं। नारदजी-जैसे कोई कृपा करके किसीको ले आवें तो ब्रह्माजीको उनकी ओर ध्यान नहीं देना पड़ता। ले आनेवाला ही उसे किसी दिव्यलोक पहुँचा देता है।

जिनके अन्तःकरणमें सब वासना-संस्कार हैं, किन्तु मरते समय किसी भगवद्रूप या नामका स्मरण रहा, उन्हें तो कर्म-नियन्ता ही उस भगवल्लोक-में भेज देते हैं, जिसका स्मरण करते उन्होंने शरीर छोड़ा। समस्या तब आती है, जब कोई मनुष्य ब्रह्माजी या ब्रह्मलोकके किसीका स्मरण करते शरीर छोड़ता है। उसे ब्रह्माजीको ही सँभालना पड़ता है, जिसका ब्रह्मलोकमें सँभालनेवाला समर्थ न हो। अनेक बार ऐसे आगतोंको उनके अभीष्ट भगवद्धाम भी पहुँचाना पड़ता है।

महाप्रलय आ पहुँची है। ब्रह्माजीकी आयु समाप्त हो रही है। आगामी सृष्टिमें कौन ब्रह्मा बनेगा, यह ब्रह्माजीको सोचना नहीं है। ब्रह्मा, यम आदि तो वे महानुभाव बनेंगे, जो सृष्टिकालमें भगवान् नारायणकी आराधना करके सार्ष्टि मोक्षके अधिकारी हो गये है और अभी भगवल्लोकमें हैं। ❋

यम—कुवेरादिका पद भी समाप्त हो रहा है। उनके लोकोंका भी महाप्रलयमें लय हो जाता है; किन्तु उनमें यम-जैसे महाभागवत सीधे भगवद्धाम चले जायँगे और अन्य ब्रह्माजीमें एक होंगे।

❋ सार्ष्टिपदके अधिकारी परमवैकुण्ठ, गोलोक, साकेतादि नहीं जाते। वे उसी ब्रह्माण्डाधीश विष्णुभगवान्के वैकुण्ठ जाते हैं और सृष्ठिकी आदिमें उन्हींसे प्रकट होकर अपना पद सँभालते हैं।

नरक और स्वर्ग तथा उनके जीवोंको अभी प्रकृतिमें लय होकर प्रसुप्त रहना है। इस समय ब्रह्माजीको अधिकारी जनोंको तत्त्वज्ञानका उपदेश करनेके पूर्व महर्लोकसे तपोलोकतकके आये योगेश्वरोंकी व्यवस्था करनी है। जो तत्त्वज्ञानके अधिकारी हैं, वे तो तत्त्वज्ञान प्राप्त करके मुक्त हो जायँगे; किन्तु जिनको आगामी सृष्टिमें कोई तत्त्व बनना है, उनको व्यवस्था कर दी जानी चाहिये।

'आप सब समाधिमें स्थित हो जायँ।' सृष्टिकर्ताने आदेश दिया।' क्योंकि जो भगवल्लोक जानेमें समर्थ थे और जिनको वहाँ सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य या सायुज्यका अधिकार मिल चुका था, वे तो ब्रह्मलोकमें थे ही नहीं। देवर्षि नारद, सनकादि कुमार-जैसे बहुतसे कारक पुरुष भगवान् विष्णुके समीप चले गये थे। अब जो शेष थे, जिन्हें प्रकृतिसे एक होकर रहना था, उन्हींकी व्यवस्था करनी थी। अतः ब्रह्माजीने सूचना दी—'उत्थानके संकल्पसे रहित निर्बीज समाधि; क्योंकि उत्थान तो अब स्वयं सर्वेशकी इच्छासे होगा।'

'वत्स ! तुम महाभाग असितका ध्यान करते समाधिमें स्थित हो।' महर्षि भृगुने अमितको आदेश किया—'तुमको पर्वत-शिखर होना है। तुम पृथ्वीके अंश–पुत्र बनोगे !'

'मैं प्रयत्न करके भी अनालम्ब रह नहीं पाता हूँ।' अमितने अपनी अवस्था निवेदित की—'मैंने चेष्टाकर देखी; किन्तु महाभाग असितका भी अस्पष्ट, कुछ अद्भुत रूप ही मनमें आता है।'

'जो स्वतः आता है, उसे स्पष्ट होने दो।' भृगुने कहा—'केवल एक सूचना—शीघ्रता कहीं, कभी मत करना। इससे केवल कष्ट होगा और सम्भव है कि प्रगतिमें बाधा पड़े।'

महर्षि भृगुको ब्रह्माजीका ब्रह्मोपदेश प्राप्त करना था। उनको तो आगामी सृष्टिमें कारक पुरुष होना नहीं था। उनका कार्य और पद कौन सँभालेगा, इसकी कोई चिन्ता उन्हें करनी नहीं थी। यह जिन श्रीहरिका कार्य है, वे समर्थ हैं।

अब आगेका वर्णन सम्भव नहीं है। सब वर्णन शब्दोंके माध्यमसे होता है। मनमें आकर आते हैं या शब्द। आकार अर्थात् रूप और शब्द इनकी लयकी स्थिति कल्पनासे परे है।

पृथ्वीका जलमें, जलका अग्निमें, अग्निका वायुमें और वायुका आकाशमें लय हो गया। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दका भी एक-से-दूसरेमें लय हुआ और अन्तमें वैकारिक, राजस, और तामस अहंकारका भी भेद मिट गया। इनके मिटनेपर जो महत्तत्त्व इनका कारण था, वह भी अव्यक्त हो गया।

कहीं कोई लोक-लोकान्तर सृष्टिमें नहीं। सृष्टिसे परेके दिव्यलोकोंका अस्तित्व तो नित्य है; किन्तु समस्त मायिक प्रपञ्चोंका अस्तित्व समाप्त हो जानेपर जो शेष रहता है, वे भगवान् काल। शून्यवत् अप्रतर्क्य वह स्थिति। वही तो पारमेष्ठ्य है। उसीसे तो पुनः सृष्टि व्यक्त होती है। उस अव्यक्तसे ही पुनः नवीनको व्यक्त होना है।

महाप्रलयके उस अनन्त अतर्क्य कालको किसी प्रकार सूचित करना सम्भव नहीं है। अतः आगेका वर्णन नूतन सृष्टिके प्रारम्भसे ही करनेको सभी विवश होते हैं।

पार्थिवत्त्व-प्राप्ति—

विश्वकी अभिव्यक्तिके क्रममें अन्तर नहीं पड़ा करता। महाप्रलयका काल पूरा हुआ। भगवान् कालकी ही प्रेरणासे गुणोंकी साम्यावस्थाको प्राप्त प्रकृतिमें क्षोभ हुआ। फलतः महत्तत्त्व, अर्थात् समष्टिबुद्धि व्यक्त हुई। वैसे ही, जैसे दधि-मन्थन प्रारम्भ होनेपर पहले बुलबुला उठता है।

महत्तत्त्वसे अहंकार व्यक्त हुआ तो वह त्रिविध हो गया—वैकारिक, राजस और तामस। इन तीनोंमें विकारका क्रम चला और क्रमशः इन्द्रियाँ (उनके अधिदेवता), मन और बुद्धि व्यक्त हुईं। तामस अहंकारसे पहले शब्द-तन्मात्रा और उसका स्थूल रूप आकाश, आकाशसे स्पर्श-तन्मात्रा और उसका स्थूल रूप वायु, इसी क्रमसे रूप तथा उसका स्थूल रूप अग्नि, अग्निसे रस-तन्मात्रक जल और जलसे गन्ध-तन्मात्रक पृथ्वी प्रकट हुई।

यहाँतककी सम्पूर्ण सृष्टि सूक्ष्म थी। पञ्च महाभूत अन्तिम विकृति हैं। इनके पश्चात् कोई विकार नहीं। आगे तो केवल सम्मिश्रण; क्योंकि सृष्टि ही सम्मिश्रण है। इसमें शुद्धरूप केवल सूक्ष्मतामें उपलब्ध हो सकता है।

सम्मिश्रण प्रारम्भ हुआ। पञ्च महाभूतोंका पञ्चीकरण हुआ और तब कहीं स्थूल आकाश ऐसा हुआ कि उसका अनुभव हो, उसमें शब्द-संचरण कर सके। स्पर्शात्मक स्थूल वायु, अग्नि, जल व्यक्त हुए। तब जलमें पृथ्वी प्रकट हुई।

अनन्त आकाशमें जहाँतक ग्रह-नक्षत्रादि हैं, उनके चारों ओर जल-तत्त्व हैं; किन्तु अव्यक्त सूक्ष्म रूपमें। वर्तमान विज्ञानको अग्नि और पृथ्वीके मध्य जो जल-तत्त्व है, वह अबतक नहीं मिला, इसलिये विज्ञान गैसोंके घनीभावसे पिण्डोंका निर्माण मानता है। वायु, अर्थात् प्रवहमान तत्त्वसे अग्निकी—उष्णताकी, ऊर्जाकी उत्पत्ति हुई। इस ऊर्जाके ही रूप न्यूट्रॉन, प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन आदि हैं; किन्तु इन कणोंके घनीभावमें जो कारणभूत रस-तत्त्व है, वह अबतक विज्ञानको अज्ञात है।

रस-तत्त्वके अज्ञात होनेके कारण कारण-वारि, उसमें शेष (आकर्षण-की सत्ता), उसके अङ्कमें सोनेवाले सम्पूर्ण सृष्टिके पालक विष्णु और उनकी

नाभि-कमलसे उत्पन्न ब्रह्माको समझने-समझानेका उपाय नहीं है। अत: पुराणकी भाषामें ही बात करनी पड़ेगी।

रस-तत्त्व, अर्थात् पुराणोंका वह अनन्त महासागर। उसमें शेषशायी-की नाभिसे प्रकट हुआ ज्योतिर्मय महापद्म और उसपर व्यक्त हुए चतुर्मुख सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी। उन्होंने उस अपने आसनभूत पद्ममें ही समस्त लोकोंकी कल्पना की। यह सब सूक्ष्म सृष्टि है; क्योंकि हमारे-आपके पास केवल पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और इनके विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे बाहर हम सोच ही नहीं पाते, हमको इन्हींके प्रतीक शब्दोंमें समझानेको शास्त्र बाध्य हैं।

ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टि की और जब वह बढ़ती नहीं दीखी, स्वायम्भुव मनु और शतरूपाको माध्यम बनाकर युग्मज सृष्टिका प्रारम्भ किया।

ब्रह्माजीकी मानस-सृष्टिके ऋषि और मनुकी संतानोंके द्वारा सृष्टिका क्रम चला। सृष्टिके अधिकांश प्राणि-पदार्थ महर्षि कश्यपकी विभिन्न पत्नियोंसे उत्पन्न हैं। यहाँ भी स्मरण रखना है कि महर्षि कश्यप स्थूल मनुष्य नही हैं और न उनकी पत्नियाँ ही सामान्य मानवी हैं। अवश्य कश्यपजीसे आगेकी संतयि-परम्परा स्थूल सृष्टिकी है।

धरा तो भूदेवी हैं, भगवान् विष्णुकी पार्श्ववर्तिनी। उन्हें केवल प्रकट होना था। उन (जल-रस) निमग्नाका भगवान् वाराहने उद्धार किया और उन्हें जलके ऊपर स्थापित किया।

पृथ्वीपर पर्वत, सरिता एक साथ नहीं प्रकट हुए। उनके प्रकट होनेमें भी समय लगा। अवसर आया, जब अमित पर्वत-शिखरके रूपमें प्रकट हुआ। वह भी कश्यपजीकी संतान ही बना।

आपको सदेह होगा कि अमित जड़ हो गया। हम-आप किस अर्थमें चेतन हैं? आपका शरीर जड़ है या चेतन? जड़त्व तो भ्रम है। शरीरका कौन-सा अणु जड़ है? एक-एक सजीव कणोंने शरीर नहीं बनाया है? इन अरबों-खरबों सजीव कणोंका संघीभाव शरीर और उस शरीरको मैं माननेवाले आप चेतन। जड़ शरीरका अभिमानी चेतन होता है, यह सीधी बात आप समझ गये होंगे। अमित भी चेतन ही, पर्वत-शिखर तो उसका शरीर। वह उस पर्वतका अधिदेवता वैसे ही जैसे अपने शरीरके अधिदेवता आप।

अन्तर केवल यह कि आपका शरीर; सचल है और अमितको अचल शरीर प्राप्त हुआ था।

ऐसा नहीं है कि अमितको कोई समाज ही नहीं प्राप्त हुआ। संसारमें जितने पर्वत, ग्राम, पुर आदि हैं, उन सबके अधिदेवता हैं। भारतके ग्रामोंमें तो अब भी ग्राम-देवता, ग्राम-कालिकाकी ही पूजा होती है। अधिदेवता तो गृहके भी होते हैं और उन क्षेत्रपालकी भी पूजा होती है।

अधिदेवताओंके इस विशाल समाजमें भी छोटे-बड़े होते हैं। जैसे नगर और ग्रामका, विशाल भवन और झोंपड़ीका तारतम्य है, इसके अधि-देवताओंकी शक्ति एवं वैभवमें भी तारतम्य है।

अमित नगाधिराज हिमालयका पुत्र हुआ। पर्वत पूज्य भी होते हैं और उपेक्षणीय तो प्रायः होते हैं। पर्वत हरे-भरे भी होते हैं और पाषाणमात्र शुष्क भी। यह इसपर निर्भर है कि जो पर्वतका अधिदेवता है, वह पूर्व-जीवनमें कैसा था। अमितके स्वभावमें सरसता थी। तप-जैसे शुष्क साधन उसने कभी अपनाये नहीं थे। अनेकोंका आश्रयदाता रहा था और अभाव-ग्रस्तोंमें वितरण प्रिय था उसे। वह हरा-भरा सरस पर्वत बना था। उसपर पशु-पक्षियोंको आश्रय प्राप्त था। वह बहुत बड़ी संख्या प्राणियोंकी उसे अपना धारक-पालक मानती थी।

भगवद्विभूतिका अवतरण सर्वत्र होता है। प्रत्येक वर्ग उसपर गर्व करता है। भगवती आदिशक्तिने हैमवती होकर शरीर ग्रहण किया और भगवान् शशाङ्क-शेखरको वरण किया। गौरवान्वित तो इससे पर्वतमात्रने अपनेको माना, अमित तो हिमालयका पुत्र ही था। उमा उसकी सगी बहन, वह क्यों अपनेको धन्य न माने।

केवल सुख-सुविधा ही संसारमें सुलभ हो तो इसे दुःखालय कैसे कहा जाय। यहाँ विपत्तियाँ भी बहुत हैं। पर्वतोंके लिए विपत्तियाँ कम नहीं हैं। वायुका वेग, वर्षा, सरिताएँ उनमें परिवर्तन करती ही रहती हैं। भूकम्प उन्हें अनेक बार ध्वस्त करते हैं।

सबसे बड़ी विपत्ति मनुष्य—सृष्टिमें जो सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है, उसकी बुद्धि ही औरोंके लिए बहुत विनाशिका है। मनुष्य किसी प्रकारके पर्वतको तो अछूता छोड़ता। इसे कहीं पथ-निर्माण करना होता है और कहीं

इसे धातु-पाषाणका प्रयोजन पड़ता है। यह अपने स्वार्थवश कितना भी ध्वंस करता रहता है।

अमित ठोस पाषाण-पर्वत भी होता तो मनुष्य उसे कब छोड़ देता? पता नहीं, वह गुफाएँ काटता या केवल पाषाण-प्राप्तिके लिए उसे नष्ट करता। अमितमें दृढ़ता कभी थी ही नहीं, अत: पर्वत भी वह दृढ़ नहीं बना। फलत: उसकी शिलाएँ तो वर्षामें भी लुढ़क जाती थीं। अङ्ग-भङ्गका यह कष्ट उसका कभी नहीं मिटा। मनुष्यने तो उसे कुछ धातु पानेके प्रलोभनमें खोखला कर दिया।

मृत्युका कष्ट प्रलय-पर्यन्त न हो, यह बात केवल भूमि, वरुण, अग्नि आदि कारक देवताओंके सम्बन्धमें है। हम-आप जानते हैं कि गृह गिरते-बनते हैं। नगर-ग्राम उजड़ते-बसते हैं। सरिताएँ-सरोवर-निर्झर सूखते और नये निकलते हैं। ऐसे ही पर्वत-शिखर भी गिरते और नये बनते हैं। यह है इनका जन्म-मरण। अधिदेवता तो मरा नहीं करता। जीव तो आपका भी अविनाशी ही है; जन्म-मरण शरीरका और शरीरके साथ लगा है। शरीर प्राणीका—सचलका हो या अचलका।

अमित दृढ़ पर्वत नहीं था, अत: रोग-ग्रस्त रहा। उसके अङ्ग टूटते-गिरते रहे। अन्तमें उसे शरीर परिवर्तित करना पड़ा। वह शिखर नष्ट हो गया और अन्यत्र दूसरा शिखर उत्पन्न हुआ। इसमें काल बहुत लगा; किन्तु काल तो सबका अपने-अपने शरीरके अनुसार होता है।

अमितका लोक-धारणका उत्साह बहुत शीघ्र नष्ट हो गया। लोगोंने उसे पीड़ा भी बहुत दी। पर्वतपर जो प्राणी रहते थे, उनका तो अभ्यस्त हो गया वह। हम-आप भी तो मक्खी, मच्छर, चींटीके द्वारा उत्पन्न अपवित्र-ताओंकी गणना नहीं करते। कठिनाई आयी, जब मनुष्यने पर्वतपर बस्ती बना ली। मनुष्य बड़े ध्वंस किये बिना मानता नहीं और बड़ी अपवित्रता भी मनुष्य ही उत्पन्न करता है। यह ऐसे मल (विष) एकत्र कर देता है कि स्वयं इसका ही वह विनाशक बन जाता है।

पर्वतका कोई रूप—समुद्र-गर्भमें पर्वत होकर भी सुख-शान्ति नहीं दे सका। मनुष्य सर्वत्र पहुँच जाता है। मनुष्य सर्वत्र संहार लिये घूमता है।

बड़ा सुख, बड़ी शान्ति, बड़ा सम्मान भी मनुष्यने दिया। जब कोई तपस्वी, साधक आ बसा, लगा कि पर्वत होना सफल हो गया। शक्तिभर

अमित उसके लिए अनुकूलताएँ उत्पन्न करता रहा; किन्तु बहुत अल्पकालिक सुयोग इस प्रकारके मिले। अधिक तो उत्पीड़न ही प्राप्त हुआ।

सतयुग केवल शान्तिसे व्यतीत होता था। त्रेतामें ही मनुष्य काष्ठ, पाषाण, वनधातुओंके अन्वेषणमें लग जाता था और द्वापरमें तो अपने सौध खड़े करनेके लिए वह पवतोंको समाप्त ही करने लगा था।

कलियुगका कुछ न कहना अधिक अच्छा। मनुष्य विष-वर्षा सीख जाता है। विस्फोट करके पूरे पर्वत नष्ट कर देता है और वायु ऐसी बना देता है कि शिलाएँतक भुरभुरी, दूषित, विषैली हो जाती हैं।

पहुँचा ही रहता है कलियुग। ब्रह्माजीके एक दिनमें इसे एक सहस्र बार आना है। अमितको लगता है कि कोई पृथ्वीका भाग या पर्वत होना बहुत क्लेशप्रद है। वह इस प्रकार लोकधारक होनेसे ऊब गया।

'इससे तो नन्हा निर्झर अच्छा।' अमितको लगता है कि निर्झर, सरिताएँ स्वच्छ जल प्राणियोंको देनेका सुख तो पाती हैं। पर्वत होनेमें तो सुखका लेश नहीं। पर्वतको प्रायः मनुष्योंसे पीड़ित ही होना पड़ता है और पर्वतके प्रति पूज्यभाव, पर्वतका आदर तो केवल सतयुग-त्रेतामें मनुष्य कुछ करते हैं। अमितको वह भी अल्प-अपर्याप्त प्रतीत होता है।

——

जल-जीवन–

अमितको जल-जीवन प्राप्त करनेका अवसर मिल गया महाप्रलयके पश्चात् जब नवीन सृष्टि प्रारम्भ हुई; क्योंकि तात्त्विक परिवर्तन महाप्रलयके पश्चात् ही होते हैं। वैसे अधिकांश कारक-पुरुषोंका कल्पान्तमें जब सृष्टिकर्ता अपना दिनका कार्य समाप्त करके सोने लगते हैं, अवकाश दे देते हैं; किन्तु सृष्टिके मूलभूत तत्त्व पृथ्वी, जल आदि तो कल्पान्तमें बदलते नहीं। मृत्युसे पूर्व हमारा-आपका शरीर भी तो बना रहता है।

अमित नन्हा निर्झर नहीं बना था, उसे सरिता बननेका सुअवसर मिल गया। भले वह समुद्र नहीं बन सका; किन्तु संतुष्ट था। उसे लगा कि अब उसके संकटका समय समाप्त हो गया और वह सहस्रशः प्राणियोंको पोषण देगा, स्वच्छ करेगा। उनके द्वारा पूजित होता रहेगा।

किसी दुर्गम प्रदेशके पर्वत-शिखरकी अपेक्षा सरिताका सम्मान बहुत अधिक हुआ। सौभाग्य था कि वह इस जन्ममें भी भारतवर्षमें था, अतः उसकी पूजा भी होनी थी। उसे गन्ध, पुष्प, दूध, माल्य आदि भी प्राप्त होते थे स्थान-स्थानपर।

सागर तो सरित्पति हैं। उनमें समर्पित होकर, उनसे एकात्म होनेकी साध लिये ही तो प्रत्येक सरिता अनवरत प्रवाहित हैं; किन्तु धाराकी अधि-देवताका अपना स्वरूप (शरीर) उद्‌गम-स्थलसे सागर-संगमतक। यह विस्तार अल्प नहीं हुआ करता।

पार्थिव शरीर, पर्वत भी अपना व्यक्तित्व, अस्तित्त्व पृथक बनाये रहते हैं। सृष्टिका समस्त पार्थक्य मिट्टीके कारण है। नाम-रूप-सब मिट्टीके। सागर और सरिताओंका विभाजन भी पृथ्वी ही करती है। सरिता होकर अमितने अनुभव किया कि व्यष्टि-समष्टिका भेद मात्र व्यावहारिक है। अन्यथा उसका जलीय शरीर समष्टिका स्पष्ट अभिन्न भाग है। उसका प्रवाह सागरमें विसर्जित होता है और सागरका जल ही मेघ बनकर उसे परिपूर्ण करता है।

प्रथम सतयुगतक कोई समस्या नहीं थी। मनुष्य शान्त, सुखी, संतुष्ट और साधनरत था। अतः सरिताका वह सावधानीपूर्वक उपयोग करता था और इसके परिवर्तनमें स्तवन-पूजन करता था।

त्रेतामें भी कोई कठिनाई नहीं आयी। मनुष्यने कृषि-प्रारम्भ की तो वह अपने पशुओंको भी सरितामें स्नान कराने लगा। कहीं-कहीं सिंचनके लिए भी जलका उपयोग होने लगा। वस्त्रादि भी प्रक्षालित होने लगे; किन्तु अमितको कोई ग्लानि नहीं हुई। जल जीवन न दे और पङ्क-प्रक्षालन न करे तो उसका प्रयोजन ? अतः प्रक्षालनमें तो पानीका सदुपयोग है।

प्रथम द्वापरने ही सशङ्क कर दिया। नगर विशाल होने लगे और भले अपवादरूप ही हुआ हो, उनकी गंदी नालियाँ अनेक स्थानोंपर सरितामें गिरने लगीं। अवश्य ही जनपदोंके अन्तकी ओर प्रवाहकी दिशा देखकर ऐसा किया गया; किन्तु इससे अमितकी ग्लानिपर क्या अन्तर पड़नेवाला था।

असुरोंकी चर्चा नहीं करनी। वे प्रत्येक युगमें हुए। उलटे सतयुगमें अधिक प्रतापी हुए; किन्तु वे किसी सामान्य सरितापर क्यों बल-प्रयोग करते ? त्रेतामें दशग्रीव प्रवल हुआ तो उसने जलाधिष वरुणको ही लङ्काकी सिंचाई-स्वच्छतामें नियुक्त कर दिया।

'कलियुग आवेगा।' अमित कल्पना करके ही कम्पित होने लगा था; किन्तु कलियुगको किसी प्रकार रोका तो जा नहीं सकता था। कलियुगको आना था, आया। कलियुगमें सरिताओंको मल-वाहिनी बना दिया गया। उन्हें बाँधा गया, अनेक स्थानोंपर शुष्कतक कर दिया गया। उनके प्रवाह मोड़े गये, बाँटे गये।

अमितकी ग्लानि, व्यथाका वर्णन न करना अच्छा। उस एककी बात नहीं, सभी सरिताओं, सरोवरों, स्रोतोंका एक-सा हाल। सागरतक, जब मलिन हो गया, मनुष्योंने उसमें भी विष घोल डाला तो बेचारी सरिताका कितना विस्तार और प्रवाह !

मनुष्य त्रेतासे ही सरितामें शव-प्रवाह करने लगा था; किन्तु तब वे पुण्यात्मा, तत्त्वज्ञ पुरुषोंके ही होते थे। उनके सड़नेसे भले पानी दूषित होता था; किन्तु उनका सम्पर्क पवित्रता देता था। जलका अधिदेवता उससे सुखानुभव करता था। पशुओंके, विष और महामारीसे मरे लोगोंके भी शव

प्रवाहित होने लगे ! अन्ततः कलियुगमें तो सरितामें पता नहीं, कितना मल और विष बहाया जाने लगा।

चाहे जितनी ग्लानि हो अत्यन्त अपवित्र और मलिन जल सागरको अर्पित करनेमें, उपाय नहीं था। स्वयं सागरमें मनुष्य सीधे बहुत अधिक कलुषित द्रव डालने लगा था।

सागरके गर्भमें और वक्षपर भी मनुष्यके विकटाकार वाहन संचरण करने लगे और जलके निरीह प्राणियोंका संहार करने लगे तो कोई सरिता अपने आश्रितोंको कैसे बचा पाती। मनुष्य तो सर्वभक्षी, सर्वग्रासी बन गया कलियुगमें। उसे मत्स्य-भोजी होकर ही कहाँ संतोष था, वह तो घोंघे, कच्छप, घड़ियाल—सब भक्षण करने लगा।

वही दारुण क्रम, ब्रह्माजीके एक दिनमें ही कलियुगको सहस्रबार आना ठहरा। अनेक बार अमितके मनमें आक्रोश जागा। सरिताका आक्रोश बाढ़ बना; किन्तु क्रोध किसीका स्थायी नहीं होता। क्रोधमें कोई सर्जन नहीं करता और क्रोधकी क्रियाका पर्यवसान पश्चात्तापमें ही होता है। अमितको भी अपने आक्रोशसे बार-बार पश्चात्ताप ही पल्ले पड़ा। अपराधी प्रायः बच जाते थे और बाढ़में असहाय, निरीह ही बहते, विनष्ट होते थे।

अमितने तब भी विद्रोह नहीं सीखा था, जब वह कभी मनुष्य था। सरिताके रूपमें भी उसमें विद्रोह नहीं आया। उसे बाँधा गया तो भी वह शान्त बना रहा। उसने अपनेको सर्वेश्वरकी इच्छापर छोड़ दिया। उस सर्वेश्वरकी इच्छापर, जिससे बड़ा वह स्वयं अपनेको तब मानता था, जब मनुष्य था। लेकिन अब इस निर्भरताका भी कुछ अर्थ नहीं था। साधन तो मानव-योनिमें ही सम्भव होता है। अब तो विवशता भोगना था।

'इससे तो पार्थिव जीवन-पर्वत बने रहना ही उत्तम था।' अवश्य अमित इस प्रकार सोचता, यदि उसे अपने पार्थिव जीवनकी स्मृति होती। प्राणीका स्वभाव यदि वर्तमानमें संतुष्ट रहना बन जाय तो वह सुखी ही हो जाय। जो वर्तमानमें संतुष्ट होगा, राग-द्वेषसे सहज छूट जायगा। चिन्ता-शोक होता है भूतके लिए और आशङ्का, भय भविष्यके लिए। वर्तमानमें तो केवल अनुभूति है; वह अनुकूल-प्रतिकूल—दोनों हो सकती है; किन्तु जो उसको

अनुकूलतासे निरपेक्ष और प्रतिकूलतासे निरुद्विग्न बन सका, महामायाके पास भीं उसे बाँधे रहनेका कोइ पाश नहीं रहा ।

भगवान् काल किसीका शरीर नहीं रहने देते तो स्मृति भी नहीं रहने देते । अपवादरूप ही किसी मानव-बालकको पूर्वजन्मकी स्मृति कुछ वर्षतक बनी रहती है । देवताओंको—पदार्थोंके अधिदेवताओंको भी पूर्वजन्मकी स्मृति नहीं रहा करती । महाप्रलयके पहले क्या था, यह कोई नहीं जानता ।

अमित देखता था; अनुभव करता था कि मनुष्य पर्वतोंको तोड़ रहा है । पर्वतोंपर उसकी भयावनी प्रयोगशालाएँ विष-विकीर्ण करती हैं । अतः अमितके मनमें पर्वत अथवा पार्थिव कोई देह-धारणाकी स्पृहा नहीं जागी । जागनेका मोई सुयोग नहीं था ।

'सदा तद्भावभावितः' (गीता ८-६) में श्रीकृष्णने यह वाक्य यों ही नहीं कहा है । मनुष्य जिस अन्तिम संस्कारको लेकर शरीर छोड़ता है, उस संस्कारसे वह सदा-सब जन्मोंमें प्रभावित रहता है । उससे छुटकारा पुनः मनुष्य होनेपर अथवा मुक्त हो जानेपर ही मिला करता है ।

अमितने देह-त्याग किया था मानवका, जो उसमें महत्त्वाकाङ्क्षा थी सुयश, सुख, सम्मान प्राप्त करनेकी । साथ ही प्राणियोंके धारण, पोषण, पवित्र करनेकी । यह भावना उसका पिण्ड तो अभी छोड़नेवाली नहीं थो ।

अधिदेवताओंमें जल-देहके अधिदेवताओंकी शक्ति, क्षेत्र, महत्ता पार्थिव पदार्थोंके अधिदेवताओंसे कुछ अधिक ही थी । प्राणी असंतुष्ट होता है अपने ऊपरके वर्णको देखकर । अपनेसे बल, विद्या, सुयश, सम्पत्ति, सुविधाएँ-हीनकी ओर देखे तो प्राणी सुखी बना रहे । यही माया है कि वह ऐसा कर नहीं पाता ।

अमितका ध्यान बार-बार अग्निदेवकी ओर जाता है । उसे लगता है कि अग्निदेवको बहुत सुख प्राप्त है । देवता सभी ज्योतिर्देह; किन्तु अग्नि तो प्रकाशस्वरूप ही हैं । यज्ञादिमें दूसरे देवताओंकी भी स्तुति होतो है; किन्तु अग्नि प्रमुख पूज्य हैं ।

अग्नि ही आहुतियोंका वहन करके देवताओंको भी आहार देते हैं । प्राणियोंके भीतर जाठराग्नि बनकर अग्नि ही सबके पोषक हैं । पानी

प्रक्षालन कर सकता है; किन्तु मलकी सम्यक् शुद्धिकी सामर्थ्य अग्निमें ही है।

अमितको अपनी असमर्थता, अल्पता अखरने लगी। उसका ध्यान ही नहीं गया अत्रि-नन्दन चन्द्रमाकी ओर। शशि भगवान् शिवका शिरोभूषण भले हो, उसने अमितको आकर्षित नहीं किया। सूर्य होनेकी स्पृहा जाग नहीं सकती थी। जो अत्यन्त अप्राप्य लगे, उसे पानेकी स्पृहा किसीमें नहीं जागती। सूर्य तो स्वयं भगवान् नारायण स्वयं बनते हैं। अत: आदित्य बननेका संकल्प अमितके मनमें नहीं उठ सकता था।

'अग्नि' जब कलिके मानवोंका अत्याचार उस सरिताके रूपमें अमित-को अधिक उत्पीड़ित करता, तब भी बार-बार अग्निका स्मरण आया करता। आक्रोश बनकर स्मरण। सरिता कुपित होकर भी उतना संहारक नहीं बनती जान पड़ती अमितको, जितना अग्नि।

'अग्नि बना जा सके !' जल-जीवन प्राप्त करके स्वभावत: इस वर्गके अधिदेवताओंकी यही महत्त्वाकाङ्क्षा बनती है। अमितकी महत्त्वाकाङ्क्षा यही और यह उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

अनलात्मा—

अमितकी अभिलाषा अनुचित नहीं थी और जब अभिलाषा अपने अधिकारके अनुरूप होती है, अवश्य सर्वात्मा उसे सफल करता है। प्रश्न केवल समयका ही होता है। अमितको भी महाप्रलयतक प्रतीक्षा करनी पड़ी। नवीन सृष्टिके प्रारम्भमें ही वह ज्योति-तत्त्वसे तादात्म्यापन्न हो गया।

व्यष्टि-व्यक्तित्त्व बहुत कुछ जल बनते ही बाधित हो गया था। अग्नि-में तो व्यक्तित्त्वका बन्धन नगण्यप्राय बन गया। वैसे तो शास्त्र अग्नि और मरुत्के भी उनचास-उनचास भेद करते हैं; किन्तु सुना आपने भले हो कि दैत्यमाता दितिके उनचास मरुद्गण पुत्रोंको इन्द्रने देवता बना लिया; किन्तु उनका नाम तो केवल वैदिक महायज्ञोंमें ही स्मरण किया जाता है। यही अवस्था अग्निकी है।

आवसथ्य, गार्हपत्य, आवहनीय, दक्षिणाग्नि-जैसे थोड़े भेद और लोकमें दावाग्नि, वाड़वाग्नि, जाठराग्नि, वैद्युताग्नि, काष्ठाग्नि कह लीजिये। आप भेद ही करना चाहें तो विषाग्नि, पारद, स्वर्ण तथा आसव (ऍसिड) को भी अग्नि कह सकते हैं।

अमित अनल होकर बहुत प्रसन्न हुआ था। उसे इन भेदोसभेदोंकी बहुत पड़ी नहीं थी। व्यक्तित्त्व बचा रह गया होता मानव-जीवनमें तो उसे ये अवस्थाएँ क्यों प्राप्त होतीं; किन्तु वह निर्गुणवादी—व्यक्तित्त्वका प्रबल विरोध है निर्गुण अद्वैत-तत्त्वसे। वहाँ निर्विशेष स्वीकृत है और विशेषताके बिना व्यक्तित्वकी स्थिति नहीं। अतः व्यक्तित्व शिथिल हो रहा है या अस्पष्ट बनता जा रहा है, इस बातने अमितको प्रसन्न ही किया था।

अमितको इस बातने भी प्रसन्न किया कि अग्नि आराध्य थे। सतयुग ही नहीं, त्रेता-द्वापरतक अग्निकी पूजा अनिवार्य मानी जाती थी। कलियुगके भी प्रारम्भिक कालमें अग्निके सम्मानको क्षति नहीं पहुँची।

'बहुत कल्मषपुर्ण है कलियुग। इसमें किसी देवताका सम्मान सुरक्षित नहीं रहता।' आपको सौ व्यक्ति गाली दें और दस आपकी स्तुति करें तो आपकी

मनोदशा क्या होगी ? सम्मान जितना सुख नहीं देता, उससे कहीं अधिक अपमान उत्पीड़क होता है ।

कलियुगमें अग्निकी पूजा न भी होती तो अमितको कोई दुःख न होता; किन्तु अग्निको सर्वभक्षी होनेका शाप क्या कभी हुआ, मानवने कलियुगमें उसको सीमातीत बना दिया । कभी, कहीं, किसी रूपमें तो मानवने अग्निदेवको अपवित्र करनेसे अछूता छोड़ा होता ।

व्यापक रूपमें अग्निदेवको अपवित्र मलादिको भस्म करनेका कार्य दे दिया गया । सुगन्धित हवि प्राप्त होना तो दूर रहा, दुर्गन्धित द्रव्योंका झोंका जाने लगा उनमें ग्रामोंसे लेकर महानगरोंतकका सब कूड़ा-करकट अग्निको अर्पित होने लगा ।

मनुष्यके आहारको प्रस्तुत करनेका और उदरमें उसके पाचनका कार्य भी अग्निका । मनुष्यकी पाकशालाएँ तो अपवित्र पदार्थोंको पकानेकी मन्त्रशालाएँ बन गयीं और मनुष्यका उदर—मनुष्य तो अपने उदरको प्रायः सभी प्राणियोंका समाधि-स्थान बनाने लगा था ।

मनुष्यने अनेक व्यसन बना लिये और उन सबमें अग्निको सहयोग देनेपर बाध्य किया । आप जानते ही हैं कि धूम्रपान, सुरापान और दूसरे भी मादक द्रव्योंका सेवन कितना बढ़ा है । मादकत्त्व और विषत्त्वमात्र अग्निका—उष्णत्वका विकार है ।

संसार आज ऊर्जा-संकटसे चिन्तित है । ऊर्जा अग्निका ही दूसरा नाम है या और कुछ । केवल गगनसे गिरनेवाली ही बिजली तो बिजली नहीं है । आज विश्वमें जो बिजलीका व्यापक प्रयोग है—सबका-सब अग्नि और उसमें क्या जलता है ? यह आहुति अग्निको अप्रिय नहीं लगेगी ?

आजके जितने संहारक अस्त्र हैं और जो भी नवीन अन्वेषण हो रहे हैं, इन सब हत्याओंका माध्यम अग्निको बनाया जा रहा है । खेतोंमें ही कीटनाशकके छिड़कावसे लेकर नालियोंमें पड़नेवाले द्रव और महानाशके अग्रदूत संहारकास्त्र—विष, एँसिड, विद्युत्—सब अग्निके रूप हैं, यह समझकर आप देखें कि अग्निदेवकी कितनी दुर्गति मनुष्यने की है ।

समुद्रमें वाडवाग्निके रूपमें भा शान्ति नहीं। सागरमें भी मनुष्य नगरोंके और यानोंके अपवित्र मलोंका अम्बार डालता है। सागरमें भी अपने आसुरी यन्त्रोंसे उत्पात करता है। सागरमें भी परमाणु-बमका विस्फोट……… ।

अन्तरिक्षमें स्थित अग्निसे भी विज्ञानकी छेड़-छाड़। यह छेड़-छाड़ तो सूर्यसे भी प्रारम्भ हो गयी। भगवान् भास्कर अब केवल अर्घ्यके ही अधिकारी नहीं रहे, उन्हें भी असुर-मानव सेवा सौंपना चाहता है और उसकी सेवा—अपवित्रता, हिंसा, उत्पीड़न न हो तो मानव असुर ही क्यों कहा जाय !

स्वर्ण, पारद एवं अनेक ज्वलनशील पदार्थोंके रूपमें अग्निदेव धराके उदरमें असंख्य वर्षोंसे ध्यानस्थ रहे। उनके तरल और ठोस दोनों रूप। मानव समझता ही नहीं कि उसके उदरमें जो तीक्ष्ण पित्त है, वही उसके आहारका पाचक है। इसी प्रकार पृथ्वीके उदरका ज्वलनशील द्रव पृथ्वीके अनेक तत्त्वोंका पालक है। मानवको तो अपनी आसुरी वृत्ति तृप्त करनी, अपनी अनन्त वासना बुझाते रहना है।

कलिके मानवकी आस्था ही नहीं देवशक्तिमें। वह तो पृथ्वी जल, वायु, अग्नि आदिको जड़ द्रव्य मानता है और इनका उपयोग अपने स्वार्थकी पूर्तिमें करना अपनी सफलता समझता है।

अमितको लगता है कि वही—अनल ही कलियुगमें आसुर-मनुष्योंका सबसे अधिक आखेट बना। सबसे अधिक अग्निको ही आक्रान्त किया गया।

अग्निका आक्रोश भी अनेक स्थानोंपर फूटा ज्वालामुखी बनकर; किन्तु अल्पप्राण मनुष्योंपर ऐसा आक्रोश प्रकट करके पश्चात्ताप ही हुआ। अज्ञानी मनुष्य तो स्वयं अपने विनाशके साधन बनानेमें अहर्निश लगा है; उसपर रोष करके भी कोई सुफल कैसे पाया जा सकता है।

'सर्वभूतहिते रताः' भूल गया मनुष्य। प्राणि और पदार्थ—सबका भला चाहने-करनेकी भव्य भावना भूली और मानव भटक गया। जब

भटक गया, तब 'मनुष्यमात्रपर दया'तक सीमित कैसे रह सकता था। 'अपने अमुक समाजतक दया'की संकीर्णता भी दूर चली गयी। मनुष्य तो अपने स्वजनोंतकका भी संहारक बन गया और इस पैशाचिकताका अधिकांश माध्यम अग्निको ही तो बनना पड़ता है।

अत्यन्त क्षुब्ध, कातर हो उठा अमित और अनल शीत-स्वभाव तो नहीं है। बार-बार कलियुगका आगमन और बार-बार यही विकटावस्था। अग्निकी सहन-क्षमता बहुत अल्प है। वैसे आप जानते हैं कि सबकी सहन-शक्तिकी सीमा होती है।

अग्निने अनेकबार बहुत व्यापक क्षेत्रसे अनुपस्थित होकर भी देखा। अग्निकी—उष्णताकी अनुपस्थिति भी प्रलय ही करती है। आजके भूतत्त्व-शास्त्री भली-भाँति जानते हैं कि पृथ्वीपर कितनी बार हिमयुग आया है और उससे कितना विनाश हुआ है। कितने देश, द्वीप और महाद्वीपोंकी सभ्यता सदाके लिए हिम-समाधि लेकर सो गयी है।

विज्ञान देव-शक्ति नहीं मानता, अतः उसे सब भौतिक उपद्रव दीखते हैं; किन्तु जो सनातन शास्त्र जड़की सत्ता ही स्वीकार नहीं करता, उसे प्रकृतिके प्राङ्गणमें होनेवाले उत्पातोंमें देवताओंका आक्रोश देख लेना कठिन नहीं हुआ करता। देवापराध हुए बिना महानाश हुआ नहीं करता; किन्तु मनुष्य प्रमाद करना कहाँ छोड़ पाता है।

आप जानते हैं कि अत्यन्त रोगार्त मृत्युकी कामना करने लगता है। अमित अन्ततः जब ऊब गया, बार-बार कलियुगका अत्याचार असह्य हो गया, वह अपने आराध्यको पुकारने लगा।

आप आश्चर्य करेंगे कि निर्गुणनिष्ठ अमितका आराध्य कहाँसे आ गया; किन्तु यहाँ चर्चा निर्गुणनिष्ठ अमितकी नहीं है। यहाँ चर्चा है अनलात्मा अमितकी। अग्निमात्रके परमाराध्य, परमोद्गम प्रलयंकर प्रभु। उनका तृतीय नेत्र ही अग्निका वास्तविक आवास है। अतः अमित उन्हें पुकारने लगा—

धगद्-गद्-धगत्काल,

जाह्नवी-जलार्द्र जटाजाल,

धूम्र-धूसर व्योमकेश—

धूर्जटि प्रभु,

मुण्डमाल जागो !

जागो हे प्रलयंकर,

कराल कालिका-संग !

भस्मीकृत अनंग,

भूति आंग,

भयानक भूत-प्रेत लिये

भुजग-भूषण, महाभैरव जागो !

ताण्डव करो त्रिपुरारि,

खोलो तृतीय नेत्र ,

मिटा दो

सृष्टिका कदर्य सत्र ।

त्रिशूल-विदीर्ण ब्रह्माण्ड—

पशुपति !

प्रकट करो पौरुष प्रकाण्ड,

कर दो प्रपञ्च-भस्म

भूतनाथ जागो !!

मानवके अत्याचारोंसे प्रपीड़ित केवल अमित-अनलात्मा अमित ही नहीं पुकार रहा था, पुकार तो रहे थे पृथ्वी, वरुण, वायु-प्रभृति सब अधि-देवता। जब प्राण शरीर सँभालनेमें असमर्थ हो जाता है, तभी तो आर्त होकर वह मृत्युकी कामना करता है। समष्टिके धारक अधिदेवता आर्त पुकारने लगे थे।

'प्रलयकी पुकार' अधिदेवता आकुल होकर जब यह पुकार करने लगें, समझ ही लेना चाहिये कि सृष्टिकर्ताकी आयु समाप्त हो गयी और उनका अन्तकाल आ पहूँचा। महाप्रलय ऐसी ही अवस्थामें होती है।

——

वायु बनकर—

आप आसानीसे अनुमान कर सकते हैं कि अग्निका अन्त होगा तो वह क्या बनेगा। आप इस तथ्यसे अवगत हैं कि कार्य अपने कारणमें विलीन होता है। अग्निकी उत्पत्ति होती है वायुसे, अत: अग्निका विलय भी वायुमें। अग्नि दीप-शिखा हो, अङ्गार हो या ज्वाला हो, बुझनेपर वायुमें लीन होता है, यह आपका प्रत्यक्ष अनुभव है। अनलात्मा अमितका जब महाप्रलयमें अन्त हुआ, उसे वायुमें विलय प्राप्त हुआ। महाप्रलयके पश्चात् जब सृष्टिका समय आया, वह वायु बनकर व्यक्त हुआ।

वायुमें तो व्यक्तित्व सर्वथा भ्रम है। मेरी श्वास और आपकी श्वास-का बटवारा कहाँपर होता है? हम-सब क्या एक ही वायुमण्डलमें श्वास नहीं ग्रहण करते?

वायुमें विकार तो होता है; किन्तु व्यक्तित्वका बटवारा नहीं होता। वायुको विज्ञान द्रव बना लेता है। वायु ही नहीं, तत्त्व सब स्वभावसे शुद्ध हैं। उनमें मिश्रणसे विकृति प्रतीत होती है। सुगन्धि या दुर्गन्धि वायुकी नहीं, उसमें किसी अन्यके संसर्गसे आती है—पार्थिव पदार्थके संसर्गसे; क्योंकि गन्ध पृथ्वीका गुण है। वायु केवल गन्धका वहन करता है; किन्तु उसे देर-तक, दूरतक साथ नहीं रखता। वायु तो उसे त्यागता जाता है।

समस्त प्राणियोंका प्राण वायु। सृष्टिकी समस्त गतिका आधार वायु और वायु व्यापक है। वायु सीमित नहीं होता। इसलिये शरीरमें वायुकी तन्मात्रा स्पर्शकी इन्द्रिय-त्वचा पूरे शरीरमें व्यापक है।

शीत और उष्ण, कोमल और कठोर, ये ही दो युग्मानुभव स्पर्शका स्वरूप हैं। वैसे दितिपुत्र मरुद्गणोंकी संख्या उनचास है। वैदिक बड़े यज्ञोंमें उनका नाम लेकर आहुति दी जाती है; किन्तु हम-आप वायुके बहुत कम रूपोंसे परिचित हैं। विज्ञान अवश्य अनेक वायवीय भेद करता है—ऑक्सि-जन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन आदि।

शरीरमें प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान—ये पाँच प्राण तो आयुर्वेद मानता है। इनके अतिरिक्त योग और पाँच प्राण मानता है—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय।

समष्टि संसारमें आप वायुकी गतिहीनप्राय स्थितिसे परिचित हैं और मन्द गति, मध्यम गति तथा अंधड़से भी। यह भी आप जानते हैं कि वात्या-चक्र (बवण्डर) भी वायुका ही बनता है।

गतिभेदसे, स्थानभेदसे, कार्यभेदसे, आप नाम चाहे जितने बना लें; किन्तु वायुमें वास्तविक भेद होता नहीं। अमित वायु बना तो व्यक्तित्व विलीनप्राय हो गया। अवश्य आधिदैवत जगत्में देवताओंमें वायु एक देवता हैं और वे वायव्यकोणके अधिदेवता हैं।

अग्नि हव्यवाह हैं और वायु गन्धवह। अग्नि और वायुका सख्य सुदृढ़ है। आपने अनुभव किया होगा कि कहीं आग लगती है तो वायुका वेग भी बढ़ जाता है।

अमित वायु बनकर सतयुग, त्रेता, द्वापरतक सुप्रसन्न रहा। योगियों-का सब अभ्यास वायुपर आधारित है। वायु नियन्त्रित हो तो मन नियन्त्रण-में आवे। प्राणायामका प्रयोजन ही मनोनिरोधके लिए। महाशक्ति कुण्डलिनी वायुरूपा।

जितने भूत-प्रेत, देवी-देवता हैं, सब वायु-शरीरी। अन्तर केवल इतना पड़ता है कि भूतादि धूम्रकाय होते हैं और देवता ज्योतिर्देह; किन्तु दोनोंका देह वायुरूप ही होता है। वायु न हो तो गति कहाँसे आवे।

वायु पूजित हुआ और त्रेतामें जब भगवान् शंकर अपने अंशसे हनूमान् बने वायुपुत्र होकर, वायुका सम्मान बहुत बढ़ गया। द्वापरतक कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई। वैसे जब असुर प्रबल हुए, सभी देवता संकटमें पड़ गये। उस समय अकेले वायु कैसे बच सकते थे।

समस्याएँ सदा कलियुगमें ही उत्पन्न होती हैं। कलियुगका भोग-परायण मानव ही समस्याएँ उत्पन्न करता है। कलियुगके मानवने विज्ञानकी क्या उन्नति की, वायुके विपत्तिके दिन बुला दिये।

वायुको विकृत करके कोई स्वयं विपत्तिसे बचनेकी आशा नहीं कर सकता। वायु तो प्राण है प्राणियोंका। वायुकी विकृतिका प्रभाव सीधे सभी-

के जीवनपर पड़ता है; किन्तु अपनी सनकमें मनुष्य कहाँ सुनता-सँभलता है।

हवन-यज्ञ देवताओंकी आराधना तो थी ही, मनुष्य देवताओंको संतुष्ट करके स्वयं भी तो लाभान्वित होता है। देवता तो तत्काल प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं। कम-से-कम वायुके सम्बन्धमें तो मनुष्य स्पष्ट समझता है कि वायुमें वह जो शुभ या अशुभ मिलाता है, उसका परिणाम उसे ही प्राप्त होता है। इतनेपर भी मनुष्य मानता नहीं। कलिका अज्ञानी मनुत्य सबसे अधिक अनर्थ अपने ज्ञानके अहंकारमें करता है।

यज्ञादिके पुनीत अनुष्ठान ह्रासको प्राप्त हो गये। मनुष्यने तो वनस्पतियोंका—वृक्षोंका महासंहार करके वायु-परिशोधनकी प्राकृतिक व्यवस्था भी बिगाड़ डाली।

विष और दुर्गन्धि विकीर्ण करनेके अनेक अद्भुत उपकरण कलिके मनुष्यने किये। उसके अपने आविष्कारोंने यह अवस्था उत्पन्न कर दी कि स्वयं उसे अपने अस्तित्वकी चिन्ता होने लगी। उसे श्वास लेनेके लिए शुद्ध वायु अप्राप्य हो गयी।

वायुदेव कम ही कुपित होते हैं; किन्तु मनुष्यने बार-बार कुपित किया उन्हें। अमित वायु बनकर अपनी वह उग्रता, जो उसमें अनल रहते थी, बहुत कुछ विस्मृत कर चुका था। लेकिन मनुष्यके अत्याचार उसे उग्र बननेको बार-बार वाध्य करते थे और जब कोई अधिदैव-शक्ति कुपित होगी, पृथ्वीपर प्राणियोंका विनाश होगा। पदार्थ ध्वस्त होंगे।

मनुष्यने केवल दुर्गन्धि ही विकीर्ण नहीं की, उसने ऐसे-ऐसे विष बनाये कि स्वयं आतङ्कित हो उठा। अपने इन अनर्थोंको अवरुद्ध रखनेकी चिन्ता उसीका सुख-स्वास्थ्य सोख गयी।

मनुष्यका अहंकार—वह गगनमें उड़ने लगा। गगनमें तो असंख्य पक्षी और कीट उड़ते ही रहते हैं। मनुष्य अपने गर्वमें मानने लगा कि गति-पर उसने नियन्त्रण कर लिया है। गतिपर कहीं नियन्त्रण होता है। अमित-को हँसी आती है। गतिपर नियन्त्रण हो तो ग्रह-नक्षत्रादिको अपनी इच्छानु-सार चलाया जा सके। ऐसा तो हिरण्यकशिपुतक नहीं कर सका था।

मनुष्यको वायुका परिचयतक नहीं और वह वायुके नियन्त्रणका गर्व करने लगा। जहाँतक गति है—सब वायु ही तो है। सचमुच आज विज्ञान जिसे 'शून्य अन्तरिक्ष' कहता है, वहाँ जो गतिका आधार है, उस तत्त्वको कौन जानता है ?

न्यूटनने कह दिया—'गतिको बनाये रखनेके लिए शक्तिकी आवश्यकता नहीं है, गतिको अवरुद्ध करनेके लिए शक्तिकी आवश्यकता है।'

इसमें अन्तर्निहित सत्य क्या यह नहीं है कि गति स्वयं एक तत्त्व है। उसे अवरुद्ध करना हो तो शक्तिकी आवश्यकता होती है। यह गति ही भारतीय दर्शनका वायु। लेकिन विज्ञान तो वायुके कुछ स्थूल रूपोंतक ही परिचित हो सका है।

वायुदेव—अमित उदार है। उसे किसीको भी उड़ान भरते देखकर प्रसन्नता होती है। जो सबका प्राण है, वही तो सबका पोषक एवं प्रियकर्ता है। उसके अङ्कमें क्षुद्र कीटतक उड़ते हैं, मनुष्य तो सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ सृजन है।

केवल व्यथा होती है वायुदेवको। कलियुगका दम्भी मनुष्य दिग्भ्रान्त होकर उनके भीतर विष और दुगन्धि विकीर्ण करता है। इस प्रकार असंख्य प्राणियोंका हत्यारा बनकर अपनी आयु भी घटा लिया करता है।

भले मनुष्य वायुदेवको यज्ञाहुति न देता, भले स्तवन न करता और भले सम्मान देनेकी श्रद्धा उसमें न होती; किन्तु यदि विष और दुगन्धि विकीर्ण न करता, यदि बनस्पति-जगत्‌का उच्छेद ही करनेमें न लगता, यदि अनन्त सूक्ष्म प्राणियोंकी हत्या न करता तो वायुदेव मनुष्यके सानुकूल बने रहते। मनुष्यको बल, वीर्य और शान्तिका अभाव न होने देते; किन्तु हायरे मनुष्य............।

देवताओंकी मनुष्यके प्रति सहानुभूति ही स्वाभाविक है। मनुष्य-जीवनने ही उन्हें देवत्व-प्राप्तिके योग्य बनाया। मनुष्यके सत्कर्म ही उन्हें सबल-समर्थ रखते हैं। मनुष्यकी श्रद्धा, सात्त्विकता और अर्चा पुष्ट करती है देवताओंको। लेकिन मनुष्य इतका अधम हो जाता है कलियुगमें आकर कि देवताओंको कुपित कर देता है। देवताओंको भी दुःखी कर देता है। देवताओंकी सहज दया, क्षमा भी दब जाती है।

अमित वायु बनकर सबका प्राणधारक बना। प्रवर्तक, पोषक और जीवन बना; किन्तु कलियुगके बार-बार आगमनने—कलियुगके मनुष्यों-के कुकृत्योंने उसे दुःखी कर दिया। अपने इस अविभक्त जीवनसे भी उसे उपरति हो गयी।

'निरपेक्ष, असंसक्त जीवन उत्तम है। मनुष्योंसे आहुतिकी भी अपेक्षा अभाव उत्पन्न करती है।' अमितके अन्तरमें यह द्वन्द्व चलने लगा—'जिनसे अपेक्षा होगी, वे निराश ही नहीं करेंगे, उनके अत्याचार भी सहनेको विवश होना पड़ेगा।'

अमितमें अभीतक परोपकार, प्राणि-हितैषिताकी वृत्ति बनी थी। वायु देवता हैं तो संस्कारशून्य कैसे हो सकते हैं! लेकिन मानवके कुकृत्योंने उन्हें व्यथित बना दिया था। अब वे पोषण-पालनके दायित्वसे ऊब उठे।

'व्योम ही विशिष्ट पद-प्राप्त है।' अमितकी वर्तमान अवस्था उसे प्रेरित करने लगी—'सबका धारक भी और सबसे असम्पृक्त भी। सर्वथा निरपेक्ष। जब किसीसे अपेक्षा ही नहीं तो कोई कष्ट दे कैसे सकता है! आकाश सर्व-व्यापक भूमा पुरुषका प्रतीक। किसीकी पूजाकी कोई अपेक्षा नहीं। इसीसे श्रुति भी स्तवन करती है आकाशका—'कं ब्रह्म खं ब्रह्म।'

——

व्योम बननेपर—

आकाशका अपना स्वरूप ओङ्कारकी अक्षरत्रयीका सम्मिलित दीर्घ घण्टानाद। अब तो विज्ञानके लिए इन्द्रियातीत शब्द केवल सिद्धान्तकी बात नहीं रहा, उसे व्यावहारिक बना लिया गया है। यह शब्द ही आकाशकी तन्मात्रा है। शब्द ही आकाशका वास्तविक स्वरूप है। नितान्त शून्यको आकाश नहीं कहते। नितान्त शून्य नामकी कोई स्थिति नहीं है; क्योंकि प्रकृति और परमात्मा आकाशमें सर्वत्र व्यापक हैं।

व्योम बननेपर अमितने अनुभव किया कि व्यक्तित्व नामक कुछ बचा ही नहीं है। वायुमें तो उनचास भेद भी थे; किन्तु आकाशमें भेद हुआ नहीं करता।

जलमें जाल डालकर मछली भले पकड़ी जाय; क्योंकि मछली जालके छिद्रोंसे बड़ी है, स्थूल है; किन्तु क्या जाल जलमें बटवारा कर सकता है? जलमें बटवारा करना हो तो बाँध बनाना पड़ेगा। लेकिन आकाशमें बटवारा करनेको बाँध किसका बनेगा? आकाशसे सूक्ष्म पदार्थ तो है ही नहीं।

घटाकाश और महाकाशका भेद वैसा ही काल्पनिक है, जैसा मच्छरदानीके भीतर और बाहरकी वायुमें कोई भेदकी कल्पना करे। आकाशकी दृष्टिसे तो वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वीकी सत्ता ही नहीं है। ये आकाशमें कल्पित हैं।

व्योम बनकर अमितको अपने अखण्ड तथा विभु स्वरूपका आभास हुआ; किन्तु आकाश होनेपर भी अद्वितीयत्व नहीं प्राप्त हुआ। आकाशका तो कारण भी है—अहंकार और कार्य भी है–वायु। स्वगतभेद भी है आकाशमें; क्योंकि आकाशकी तन्मात्रा शब्दमें ही स्वर एवं व्यञ्जनोंके भेद हैं।

आकाशको अपेक्षासे भले संसार कल्पित लगे; किन्तु संसार आकाशको भी अछूता कहाँ छोड़ता है! सृष्टिमें मनुष्य क्यों बनाया ब्रह्माने; यह सृष्टिके समस्त तत्त्वोंको हिला डालता है।

ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए थे मनुष्य बनाकर। दूसरे सब देवताओंने—तत्त्वाधिदेवताओंने सृष्टिकर्ताका अभिनन्दन किया था, जब उन्होंने मनुष्य बनाया। सबने मनुष्यको अपना सहभोजी मान लिया। सबको लगा कि यह हमें पुष्ट करेगा, हमारा पूरक बनेगा।*

यह मनुष्य—भगवान् नारायणने इसे अपना सखा स्वीकार कर लिया—इसमें वे श्रीहरि स्वयं संनिहित हुए। इसकी शक्ति अनन्त हो गयी। सृष्टिमें जो कुछ है, सबका यही आधार हो गया। जब सृष्टिकर्तातक मनुष्य हो अपने कर्मसे बन सकता है तो सृष्टिके शेष तत्त्व तो कभी निर्मित हैं ही। अतः मनुष्य सर्वोपरि हो गया; सबमें परिवर्तन करनेमें समर्थ हो गया।

मनुष्य ही उत्पथगामी होता है तो समस्त सुरोंको और सृष्टिकर्ताको भी सचिन्त बना देता है। सर्वेश्वरको भी अवतार लेनेको यह विवश कर देता है अपने प्रेमसे भी और द्वेषसे भी।

अमित व्योम बना, व्यक्तित्वका बाध-प्राय हो गया और निश्चिन्त हो गया। असंसक्त, निरपेक्ष आकाश। कोई व्यक्ति या परिस्थिति आघात कर नहीं सकती।

जो भी साधक या जिज्ञासु निर्गुणका पथ पकड़ता है, वह आनन्दसे भी निरपेक्ष होता है। शरीर, संसारका वैराग्य तो परमार्थके पथिकमात्रके लिए अनिवार्य है; किन्तु व्यक्तित्व तथा सुखसे भी निरपेक्ष हुए विना निर्गुण, निष्कलसे एकत्वकी अनुभूति कैसे सम्भव होगी। अमित निर्गुणतत्त्वका चिन्तक रहा है, अतः निरपेक्षता उसका सहज स्वरूप है।

सतयुग, त्रेता, द्वापरतक कोई वाधा कभी पड़ती नहीं। इन तीनों युगोंमें कभी कोई विशेष कष्ट हुआ भी तो असुरोंसे हुआ और उसे श्रीनारायण-ने दूर किया। वह तो सुरोंकी सामूहिक विपत्ति थी; किन्तु कलियुग तो विपत्ति बनकर ही आता है। अमितको—आकाशको अछूता वह कैसे छोड़ दे!

असुरोंमें अनेक ऐसे हुए, जिन्होंने समस्त सृष्टिको स्वेच्छानुसार चलाया। हिरण्यकशिपुने ही व्योमको भी वाधित किया। उसकी आज्ञा आकाशको भी माननी पड़ी—

---

* श्रीमद्भागवत ३.२०.५१

'नानाश्चर्यपदं नभः ।' —भा. ७.४.१६

श्रीमद्भागवतके इस संकेतका अर्थ आप समझते हैं ? इसका अर्थ है कि हिरण्यकशिपुके शासनकालमें वह स्वयं अथवा उसकी प्रजाके लोग जब कुछ देखना चाहें और दृष्टि उठावें, तब आकाशको उनके लिए आश्चर्यजनक दृश्य दिखलाने पड़ते थे, अर्थात् आकाश स्वयं सिनेमा प्रकट करता रहता था । विज्ञानको अभी इसकी कल्पना भी नहीं है ।

आकाश बनकर अमितने सोचा भी नहीं था कि कलियुग उसे भी उत्पीड़ित करेगा; किन्तु भवितव्य किसीके सोचनेपर आश्रित होता तो संसार-में कोई कभी दुःखी होता ?

कलिके मनुष्यने इन्द्रियातीत शब्दको भी सूँघ लिया और उसका उपयोग करने लगा । उसे अपना सेवक बना लिया कहना चाहिये ।

मनुष्य आकाशमें विमान उड़ावे या राकेट, आकाशको इन सबसे कोई बाधा नहीं पड़ती । आकाशमें गैसें फैलें या परमाणु-विस्फोट हों; आकाश कहाँ अणुरूप है कि उसपर इनका प्रभाव पड़ेगा; किन्तु आकाश शब्दात्मक तो है । अतः उसपर शब्दका प्रभाव पड़ता है और जब प्रभाव पड़ता है तो वह अनुकूल-प्रतिकूल—दोनों होगा ।

वेदोंका सस्वर पाठ, सुरोंका स्तवन, सात्त्विक संगीत इसीलिये प्रकृति-को प्रभावित करता है; क्योंकि उसका प्रभाव आकाशपर पड़ता है । उससे वातावरण विमल बनता है । संगीत सृष्टिमें बड़े प्रभाव उत्पन्न करता है, यह आपने सुना होगा ।

आप यह भी जानते होंगे कि आज महानगरोंमें जो अनियन्त्रित कोलाहल बढ़ रहा है, उसका मनुष्यके मन-मस्तिष्कपर दुष्प्रभाव पड़ रहा है । विश्वका प्रबुद्ध वर्ग इसका विरोध करने लगा है ।

केवल कोलाहल ही दुष्प्रभाव नहीं उत्पन्न करता; किन्तु कोलाहल आज इतना प्रचण्ड है कि उसके सम्मुख मन्द स्वरोंपर विचार करनेका किसीको अवकाश हो नहीं । अन्यथा प्रत्येक शब्द आकाशको प्रभावित करता है । स्वयं जैसा है, उसका प्रभाव भी वैसा ही पड़ेगा ।

आज जो भयानक विस्फोट किये जाते हैं, उनके कारण व्योममें निरन्तर कम्पन—विकृति आती है। भूमिपर मशीनोंकी और गगनमें वायुयानोंकी घरघराहट बढ़ती ही जा रही है।

आपको आश्चर्य होगा कि परमाणुबमका विस्फोट भी व्योमको उतना व्यथित और विकृत नहीं बनाता, जितना एक धीरेसे भी बोला गया निष्ठुर–निर्दय शब्द बनाता है; क्योंकि जिस शब्दसे किसी प्राणीका हृदय पीड़ित होता है, उसका प्रभाव तो हृदयाकाशतकपर पड़ता है। महाकाश उससे क्षुब्ध होनेसे बच कैसे सकता है।

आप एकान्तमें किसीको गाली देते हैं या किसीकी निन्दा करते हैं तो उससे आकाश क्या अपवित्र नहीं होता ? एकान्तमें जलायी गयी धूपकी सुगन्धि क्या संसारमें फैलती नहीं।

केवल गाली देने, निन्दा करने या निष्ठुर शब्द कहनेकी बात नहीं है। आप समझदार हैं। आप अच्छे-बुरे शब्दका भेद समझ सकते हैं। वैसे शब्द स्वयं न अच्छा है न बुरा। शब्द जैसी भावनाओंको भड़काता है, वैसा प्रभाव उत्पन्न करता है। आप जानते ही हैं कि अवसर-विशेषपर गाली भी श्रोताको प्रसन्न करती है। उसे उस समय अपशब्द नहीं कहा जाता।

आश्चर्य तो यह है कि मनुष्य सामूहिकरूपसे अपशब्दोंका उपयोग करता है और उसमें गौरव मानता है। जब कहीं युद्ध छिड़ता है, दोनों पक्ष एक-दूसरेके विरुद्ध जो बोलते हैं, उसे आप स्तुति तो कहेंगे नहीं। वह व्योमको विकृत करनेका सामूहिक प्रयत्न है या नहीं ?

मनुष्यने तो आविष्कार किये और अपने अमित प्रभावसे यन्त्रोंका दुरुपयोग प्रारम्भ कर दिया। आज जो सभी पृथ्वीके केन्द्रोंसे प्रसारण होते हैं, वे रेडियोके हों या टेलीविजनके, कभी एक दिनके किसी एक केन्द्रके प्रसारणका वर्गीकरण करके देखिये कि उसमें उत्तेजक, वासना-वर्धक कितने वाक्य हैं और कितना स्वर शान्त, सौम्य है।

इन सार्वजनिक प्रसारणोंमें तो मनुष्य बहुत-कुछ संयमित रहता है; किन्तु अपने एकान्तमें अथवा अन्तरङ्गोंके मध्य जो रिकॉर्ड लगाता है, जो संगीत गाता या सुनता है, स्वयं अपने मुखसे जो बोलता है, उसकी चर्चा व्यर्थ है।

मनुष्य जो सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, सबसे निकृष्ट भी है। दूसरे प्राणी तो अकारण बोलते ही नहीं। बिना प्रयोजन बोलेंगे तो आनन्दमें गावेंगे या उत्तेजनामें बोलेंगे। उनका शब्द गगनमें अत्यन्त सामान्य प्रभाव उत्पन्न करता है। व्योमको विकृत तो मनुष्यके शब्द बनाते हैं।

मनुष्य ही है, जो बकवादी है। इसे अकारण बोलते रहनेका व्यसन है! व्यर्थ बातें ही प्रायः करता है और उनमें अधिकांश अपशब्द होते हैं। व्यङ्ग्य बोलकर दूसरेको व्यथित बनानेमें मानव ही पटु है।

अमित व्योम बनकर भी बहुत व्यथित हुआ मनुष्यकी वाणीके विषम प्रहारोंसे, किन्तु कोई उपाय नहीं। आतुरता—अकुलाहटसे कोई लाभ नहीं। वह जानता है कि तत्त्वोंका रूपान्तर महाप्रलयके पश्चात् ही होता है।

अहंकार—

अहंकारको भी आप वैसे ही अपना समझते हैं, जैसे श्वासको। जबकि प्रत्यक्ष देखते हैं कि सामान्य व्यापक वायु ही आपकी नासिकामें जाता है और बाहर निकलकर उसीमें मिलता है। अहंकार मूल तत्त्व है ओर उसके तामस-भागसे आकाशादि पञ्चभूत उत्पन्न हुए हैं। जब आकाश ही आपका अलग नहीं बनता तो उसका जो कारण है, उससे जो सूक्ष्म है, वह आपका कैसे बनेगा ! उसमें व्यक्तित्त्व कैसे सम्भव होगा !

आश्चर्यकी ही बात है कि अहंकारके भी सात्त्विक-राजस अंशसे उत्पन्न मन-बुद्धिमें हम-आप अपनत्वकी कल्पना करते हैं। यह सोचते ही नहीं कि हमारा मस्तिष्क एक रेडियोके समान है और वह व्यापक तरंगोंको ग्रहण करता रहता है। अपने रेडियोमें आनेवाले गायनको आप कभी अपना संगीत स्वीकार करेंगे ?

अमितकी बात अब नहीं की जानी चाहिये। आकाश होकर ही व्यक्तित्त्व समाप्त हो जाता है तो अहंकारमें संज्ञा कैसे बन सकती है।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—इस अन्त:करण-चतुष्टयको यदि आप ग्रहण करते हैं तो भी यह समझना शेष रहता है कि शरीरमें ही आपका निजो क्या है ? मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु, आकाश—इन पञ्चभूतोंसे बना शरीर। इनमें आकाश अखण्ड-अपरिवर्तनीय है; लेकिन शेष चारों तत्त्व तो अहर्निश परिवर्तित होते रहते हैं।

शरीरकी अपेक्षा मन सूक्ष्म है, यह आप जानते हैं। शरीरमें ही अपना कुछ नहीं तो मनको अपना मानना कितना उपयुक्त होगा। दूसरे मन न शुद्ध होता, न अशुद्ध। मनमें जैसे संस्कार आवें, मन वैसा। जैसे किसीकी श्वास दुर्गन्धित भी होती है; किन्तु श्वासकी वायुमें तो सुगन्धि-दुर्गन्धि होती नहीं। उदर या मुखमें दुर्गन्धि है तो वहाँसे आनेवाली वायुमें वह मिल गयी है। ऐसे ही आपके संस्कार, अर्थात् आपके कर्म, सङ्ग, अध्ययन आदिसे बने संस्कार मनमें आकर मनको शुद्ध या अशुद्ध कर रहे हैं।

संकल्प-विकल्प करनेवाला मन संस्काराश्रित है और जन्म-जन्मान्तर-की संस्कार-राशिका नाम 'चित्त' है। अहंकार और बुद्धि ही बचते हैं आपके अन्तःकरणमें, जिन्हें तत्त्वरूपमें गिना जाय। इसमें बुद्धिकी बात अगले प्रकरणमें। अहंकार आपका और आपमें नहीं है। अहंकारके आप, अहंकारमें आप। अहंकार ही आपकी सत्ता और आपका धारक है।

महाँ मनका विवेचन है* वहाँ माना जाता है कि शरीरके श्वास-प्रश्वास, रक्ताभिसरण, आहार-पाचन, मलाभिसारणादिकी क्रियाओंका संचालक अहंकार ही है। अहंकार ही है, जो आपमें अपने नामका संस्कार सँभालता है और उस नामसे पुकारनेपर सुषुप्तिसे भी आप जाग पड़ते हैं।

अहंकार हैं—रुद्र। अगले खण्डमें यह स्पष्ट हो जायगा कि व्यक्त-सृष्टिके अन्तिम आधार संहारके अधिदेवता रुद्र ही हैं। जब समष्टिमें चतुर्व्यूह-का विवेचन वैष्णवशास्त्र करते हैं, तब उनमें वासुदेव तो चेतन, परमतत्त्व हैं। संकर्षण हैं, रुद्र—आकर्षणकी सत्ता. अर्थात् व्यक्तित्वको बनाये रखने-वाली अन्तिम शक्ति। आप यह जानते हैं कि प्रद्युम्न काम हैं—वासुदेवके पुत्र। आपने कभी सोचा कि प्रद्युम्न ही प्रेम हैं या नहीं? कामका ही परिष्कृत रूप प्रेम—यह कहना उचित नहीं है। कहना यह उचित है कि प्रेमका विकृत रूप काम। प्रेम तो तत्त्व है। वासुदेव स्वयं प्रेम-स्वरूप हैं।

अनिरुद्ध मनस्तत्त्व हैं। ये ही शारदेन्दीवरश्याम धैर्यपूर्वक आराधनीय होते हैं योगियोंके और ये कामात्मज हैं। कामना न हो तो मन कुछ रहेगा? संकल्प-विकल्पहीन होकर तो मन शुद्ध चेतनसे अभिन्न रहता है।

बात यहाँ अहंकारकी। आप चतुर्व्यूहकी भाषामें संकर्षण कहें अथवा पुराणकी देवत्रयीकी दृष्टिसे रुद्र। केवल एक अन्तर है। जैसे निरा-कार-निर्गुण शुद्ध चेतन तत्त्व ब्रह्म और वही सगुण-साकार सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण। वैसे ही निर्गुण ब्रह्मकी साधना-प्रणालीसे जो रूप प्राप्त होता है, अहंकार और सगुणोपासककी क्रममुक्तिके पथमें वही रुद्र—शिव।

अहंकार शुद्ध अखण्ड तत्त्व भले है; किन्तु प्राकृत तत्त्व है, अतः अविकारी और असङ्ग नहीं हो सकता और जो असङ्ग नहीं होगा, निरुपद्रुत भी नहीं होगा।

---

* देखें—आनन्द-कानन, वाराणसीसे प्रकाशित लेखकका पुस्तक 'भारतीय मनोविज्ञान'।

आकाश भले स्वरूपतः निर्मल, स्वच्छ हो; किन्तु घटमें धूलि, धुआं या दुर्गन्धि हो तो उसकी उपाधिसे आकाशमें मलिनताका आभास होगा या नहीं ?

अहंकार सर्वत्र बुराई ही नहीं बनता। अहंकाप अमित अच्छाइयोंका भी उत्पादक है। आपको भी ऐसे सत्पुरुष मिले होंगे, जो कह देते हैं—'मैं ब्रह्मचारी या साधक, ऐसा निन्द्य कर्म कैसे कर सकता हूँ !'

गोस्वामी तुलसीदासजीने कह दिया—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥ (मानस ३.१०.२१)

जो अहंकार अपनेको बुराइयोंसे बचाता है, जो साधनमें, शुभमें लगाता है, वह तो ग्राह्य ही है। जो अपनेको किसी भी प्रकार सर्वेश्वरसे संयुक्त करता है, वह परम मङ्गलायतन।

सतयुग, त्रेता और द्वापरतक अहंकार शुद्ध बना रहा। मङ्गलायतन भी बनता रहा बहुत बड़े समूहका। मनुष्य गर्व करता था—'मैं महाराज पथु, प्रियव्रत या श्रीरामका वंशज।'

अहंकारमें आरोपण ही होता है; किन्तु आरोपण भी होता था विद्याका, तपका, साधनका, धर्मका। यह शुभारोपण ऐसा ही है, जैसे आपके शरीरमें चन्दन या इत्र लगाया गया हो। यह आपको सुखद तो होगा ही।

आरोपण ही होता है कलियुगमें भी अहंकारका; किन्तु आपके शरीरमें कीचड़, कुरंग लगाया जाय तो आपको कैसा लगेगा ? कलियुगका मनुष्य अपने पापपर गर्व करता है। अपने संग्रह और भोगका अहंकार करता है। अपनी संहारक शक्तिका अहंकार है उसमें। अहंकारका यह आरोपण अहंतत्त्वके अधिदेवताको कैसा लगता होगा ?

रुद्र महासंहारक नील-लोहित, मुण्डमाली, विभूतिभूषण, कृत्तिवास क्यों बनते हैं ? उनका रुद्ररूप ही है क्रोधका आधिदैवतरूप। वे संहारके स्वामी हैं। सृष्टिके आरम्भमें ही उत्पन्न होनेपर वे रुदन करने लगे थे। उन्हें रुलाना ही आता है। ब्रह्माजीने उन्हें सृष्टि करनेको कहा तो उन्होंने भूत, प्रेत, पिशाच-वैतालादि बनाये। रोग, शोक, उन्मादके अधिदेवताओंको उत्पन्न करने लगे। ब्रह्माको भी पुकारना पड़ा—'बस ! ब्रस ! बंद करो !'

वे रुद्र ही शिव भी तो हैं। कर्पूरगौर, चन्द्रमौलि, गङ्गाधर और विश्वका विष पीकर नीलकण्ठ। वे आश्रयदाता, आशुतोष, औढरदानी। उन्हें तो शरणागतका दोष देखना हो नहीं आता। वे तो असुरोंकी प्रार्थनाको भी 'एवमस्तु' कहते हैं।

शिव समाधि लगाये रहते हैं और रुद्र सदा सक्रिय रहते हैं। रोग, शोक, मृत्युका अनवरत चलनेवाला क्रम ही अवरुद्ध हो जाय, यदि रुद्रकी सक्रियता न बनी रहे।

अहंकार—आपके अहंकारके अधिदेवता हैं—रुद्र। आप उन्हें अपने लिए शिव बना ले सकते हैं, अन्यथा वे रुद्र तो हैं ही।

अहंकार होकर शान्ति, सौम्यत्व आया था सतयुगमें; किन्तु वह तो शीघ्र चला गया। कलियुगके मनुष्योंके अपकर्मने रुद्र—उग्र बना दिया। लेकिन जब अपना व्यक्तित्व, अपनी संज्ञा समाप्त हुई, अपना सुख-दुःख भी चला गया। अब तो जो क्रिया-प्रतिक्रिया होती है, वह संसारको भोगनी पड़ती है।

शिवका रुद्ररूप भी आराध्य ही है। वैसे उन भूतनाथको किसीकी आराधना अपेक्षित नहीं। जो उनकी शरण-ग्रहण करता है, स्वयं अनुगृहीत होता है।

अहंतत्त्व आराध्य है। आप अनजानमें भी उसकी आराधना, तुष्टि ही करते रहते हैं। सुर-असुर समानरूपसे रुद्रके आराधक हैं और दोनों वरदान प्राप्त करते हैं। यह दूसरी बात है कि वह वरदान उनके अपने लिए और विश्वके लिए भी सुखद, श्रेयस्कर बनेगा या विनाशक। शिवको यह सोचना ही नहीं आता।

प्रलयमें भी पञ्चतत्त्वोंका विनाश नहीं होता। जब पञ्चतत्त्व ही बने रहते हैं तो उनके कारण अहं, महत् तो बने ही रहेंगे। महाप्रलयमें इन सबका विलीनीकरण होता है।

महाप्रलयसे पूर्व तो अहंकारका लय हुआ नहीं करता। महाप्रलयके समय जब सृष्टिकर्ताकी आयु समाप्त होती है, तत्त्वोंका लय हो जाता है।

यहीं एक बात स्पष्ट कर देनी है। जैसे मृत्युसे मनुष्यका शरीर ही नष्ट होता है, उस शरीरका अधिदेवता सूक्ष्म शरीरयुक्त चेतन नहीं नष्ट होता,

इसी प्रकार महाप्रलयमें तत्त्वलय होते हैं। तत्त्वोंके अधिदेवता नहीं लय हुआ करते।

अहंकार तत्त्व है और रुद्र उसके अधिदेवता हैं। महाप्रलयमें रुद्रका लय हुआ नहीं करता। रुद्रका तत्त्वरूप शरीर अहं-तत्त्व लय होता है।

महाप्रलयका काल उपस्थित होनेपर अहं-तत्त्वके रूप-प्राप्त अमितका लय हुआ। हमारे शरीरकी मृत्यु होनेपर जैसे शरीर बने असंख्य जीवाणु नष्ट होते हैं, शरीरका देही—सूक्ष्म शरीरयुक्त चेतन तो तब भी बना रहता है। उसीको जन्मान्तर प्राप्त होता है।

अहंकारत्व-प्राप्त अमितका महाप्रलयमें लय हुआ अहंके कारण महत्-में। अहं-तत्त्वके अधिदेवता रुद्र तो अप्रभावित ही रहते थे।

——

महत्तत्त्व—

ओङ्कारकी अभिव्यक्ति—प्रकृतिका प्रथम कम्पन महत्तत्त्व। अहंकार त्रिमात्रात्मक है; किन्तु महत्तत्त्व तो केवल नाद है। अर्धमात्रा ही हिरण्यगर्भ है सगुण-साकार सृष्टिमें। दार्शनिक भाषामें इसे 'समष्टि बुद्धि' कहते हैं और पौराणिक भाषामें 'ब्रह्मा'। अधिक स्पष्टतासे कहना हो तो समष्टि बुद्धिका अर्थ है—हिरण्यगर्भ और ब्रह्मा उस महत्तत्त्वके अधिष्ठाता हैं।

ब्रह्माजी भगवान् नारायणके नाभि-नालसे उत्पन्न अज हैं। हिरण्यगर्भ परमब्रह्मका प्रथम मायावच्छिन्न स्वरूप। यदि चेतनका कोई स्वरूप वृत्त्या-रूढ़ होता ही न हो तो ब्रह्मज्ञानका क्या अर्थ होगा ? श्रुति कहती है—

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।'

लेकिन व्यष्टि बनकर जब चेतन अविद्यासे चिदाभास बन जाता है, तब बुद्धि भी कहाँ सूक्ष्म रह पाती है। मनुष्य तो ऐसा द्विपाद् पशु भी बन जाता है कि उससे अनेक पशु अधिक बुद्धिमान् सिद्ध हों।

आकाश स्वभावसे निर्मल है; किन्तु धूलि, धुआँ-कुहरा उसकी निर्मलताको आच्छन्न कर लेते हैं। विश्वमें अनेक प्रदेश हैं, जहाँ स्वच्छाकाश-का स्वरूप समझना ही दुर्लभ है। वहाँ सदा धूलि उड़ती रहती है या अन-वरत कुहरा पड़ता है।

बुद्धिको स्वच्छ भी बनाना है, यह मनुष्यको कलियुगमें विस्मृत ही हो जाता है। सतयुग, त्रेता और द्वापरके सब सत्पुरुषोंका साधन अन्तःकरणको अमल रखनेके लिए; किन्तु कलियुगमें तो कदाचित् किसीका इधर ध्यान जाता है।

मलिन बनकर बुद्धि तामसी हो जाती है। सूर्य भी जब ढकता है कुहरेसे, अन्धकार ही तो होता है। बुद्धिका कार्य है, मनके माध्यमसे इन्द्रियों-का नियन्त्रण; किन्तु मलिन बुद्धि तो स्वयं मनके नियन्त्रणमें, मनकी स्वच्छन्दताकी समर्थिका हो जाती है और मन हो जाता है इन्द्रियोंका अनु-गामी। इन्द्रियोंका दास उत्पथगामी तो होगा ही।

सृष्टिमें किसी पशुने कभी संहारक अस्त्रोंका आविष्कार किया ? यहाँ मुझे एक पाश्चात्य सत्पुरुषकी एक बाल-कथा स्मरण आती है—

कोई शेरका बच्चा वनसे भटक गया। थोड़ी देर घूम-घामकर लौटा तो उसकी माताने पूछा—'कहाँ चले गये थे ?'

'मनुष्योंका गाँव देखने गया था। दूरसे देखकर लौट आया।' बच्चेने उत्तर दिया।

शेरनी गुर्राई। उसने बच्चेको एक थप्पड़ धर दिया—'कुसङ्ग करने लगा है ? बिगड़ जायगा। मनुष्यको दूरसे भी देखने मत जाना।'

'मनुष्य इतना बुरा है ?' बच्चेने आश्चर्यसे पूछा—'क्या बुराई है उसमें ?'

'हम पशु प्रायः अकारण हत्या नहीं करते।' शेरनीने कहा—'कोई उत्तेजित न करे तो हम क्षुधा लगनेपर ही आखेट करते हैं और जिसे मारते हैं, उसे खा लेते हैं। मनुष्य दूसरोंको तो क्या छोड़ेगा, अपने सजातीयोंको भी मारता है और मारकर खाता नहीं। केवल मारनेके लिए मारता है।'

'मारनेके लिए मारता है !' बच्चेको बहुत बुरा लगा। उसने समझ लिया—दृढ़ मान्यता बना ली कि मनुष्य सृष्टिका सबसे बुरा प्राणी है।

शस्त्र जितना तीक्ष्ण होगा, उतना ही संहारक होगा। सृष्टिकर्ताने मनुष्यको अपने समान बनाया और अपनी बुद्धि वितरित कर दी। बुद्धि इसलिये दी कि मनुष्य सृष्टिका पालन-अभिवर्धन करे और स्वयं श्रीहरिका साक्षात्कार करके जन्म-मरणसे छूट जाय; किन्तु मनुष्यने उस बुद्धिको विकृत कर लिया। वह बुद्धिका दुरुपयोग करने लगा।

सत्त्वात्मिका बुद्धि जहाँ मनुष्यमें धर्मको प्रतिष्ठित करके उसे सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी बनाती है, वहीं राजस-तामस बुद्धि उसे संसारका निकृष्टतम शरीरधारी भी सिद्ध कर देती है।

मनुष्य ही तो था कभी अमित। मनुष्य अपने साधनसे हिरण्यगर्भतक हो जा सकता है, हुआ; किन्तु असुर कोई और प्राणी तो नहीं होते। भूत-प्रेत-पिशाच और अत्यन्त घृणित कीट भी कौन बनता है ?

मनुष्यकी शुद्ध बुद्धि उसे मुक्त कर दे सकती है। वह बुद्धि उसे श्रीहरिका सांनिध्य दे सकती है। शुद्ध भोगोन्मुखी हो तो सिद्ध या सुर बना दे सकती है। साधनमें लगे तो सम्पूर्ण सफल होनेतक बार-बार मनुष्य-जन्म देती रह सकती है और यदि राजस, तामस होकर विकृत हो जाय—पतनके पथमें लुढ़कता मनुष्य पशु-पक्षी, कीट, प्रेत कहाँतक पहुँचेगा, कोई ठिकाना नहीं।

महत्तत्त्व होकर तो कोई चिन्ता नहीं रहती। चिन्ता और सुख-दुःख व्यक्तिको होते हैं; किन्तु महत्तत्त्वके अधिष्ठाता ब्रह्माजीमें व्यक्तित्व तो होता ही है। व्यक्तित्व है तो चिन्ता भी है।

संसारकी सृष्टि भले ब्रह्माजीका स्वप्न हो, उनके मनका सृजन हो; किन्तु स्वप्नमें क्या आपका एक पृथक् व्यक्तित्व नहीं होता ? क्या स्वप्न देखनेवालेको उसीका अपना स्वप्न सुख-दुःख नहीं देता ?

महत्तत्त्वमें व्यक्तित्व भले न बचा रहे, वैशिष्ट्य तो बचा ही रहता है। महत्तत्त्व प्रकृतिका कार्य है और अहंका कारण। उसका एक स्वरूप है। जब विशेषता है, पार्थक्य है, तब वह अप्रभावित रह नहीं सकता। उसपर भी प्रभाव पड़ेगा और प्रभाव अनुकूल ही पड़ता रहे, यह हुआ नहीं करता।

सतयुग, त्रेता और द्वापर भी अनुकूल प्रभाव पड़नेका समय। इन युगोंमें केवल असुर उपद्रवी, भोगी, वहिर्मुख। असुरोंकी बुद्धिमें विपर्यय; किन्तु असुर बहुत सीमित स्थानमें, सीमित समयमें होते रहे। समुद्रमें तो बड़वानल भी है; किन्तु उससे समुद्र तो उष्ण नहीं होता। वह केवल कुछ उष्ण धाराएँ प्रवाहित कर पाता है।

असुरोंका उत्पात महत्तत्त्व को लगभग अप्रभावित ही रहने देता था; किन्तु कलियुगमें तो कुएँमें ही भाँग पड़ गयी। मनुष्योंकी बुद्धिमें विपर्यय हो गया। सद्बुद्धि, सात्त्विक बुद्धि, साधनात्मिका बुद्धि ही संसारमें दुर्लभ हो गयी। जहाँ कुछ जागृति दीखी भी, वहाँ दम्भसे उपद्रुत। महत्तत्त्व, समष्टि बुद्धि ही क्षुब्ध हो गयी। बुद्धिके अधिदेवता ब्रह्माजी भी सचिन्त हो उठे।

बार-बार कलियुग। रजोगुणकी क्रियाशीलता व्यक्तिको श्रान्त कर देती है और श्रान्तिसे तमोगुण बढ़ता है। तब निद्रा आती है। निद्रासे थकावट मिटती है, स्फूर्ति आती है; किन्तु आयुका क्षय होता है। योगियोंका एक वर्ग ही है, जो मानता है कि पैर फैलाकर निद्रा लेना बहुत बाधक है योगमें।

अत्यल्प निद्रा ली जाय और वह भी बैठे-बैठे तो सुप्त कुण्डलिनी कुछ वर्षमें स्वतः जाग्रत् हो जाती है।

बार-बार सृष्टिकर्ममें लगे ब्रह्माजीको कलियुग श्रान्त कर देता है। बार-बार वे सो जाते हैं। उनके सो जानेपर संसारका लय हो जाता है। वे उठते हैं तो नवीन स्फूर्ति लेकर, नये उत्साहसे सृष्टिमें लगते हैं।

आप सोते हैं तो अपने अन्तर्यामीसे एक होते हैं। ब्रह्माजी सोते हैं तो क्षीराब्धिशायीमें समाये रहते हैं। वे अधोक्षज हृषीकेश चाहे अन्तर्यामी रहें या अब्धिशायी, वे ही सुख, शान्ति एवं शक्तिस्वरूप हैं। अतः उससे एकत्व प्राप्त-कर होनेवाला उत्थान स्फूर्ति एवं शक्तिसे पूर्ण होता है। यह उत्थान भी इसलिये कि अविद्याके कारण व्यक्तित्व बनाये रखकर सुषुप्ति होती है। इस व्यक्तित्व-का बाध होनेपर तो अद्वयतत्त्व स्वतःसिद्ध है।

ब्रह्माजीकी आयु भी उनकी सुषुप्ति क्षय करती है। एक दिनमें उनको एक सहस्र झटके कलियुग दे जाता है। कलियुग इतना कम्पित न कर जाया करे तो सृष्टिकर्ताके श्रान्त होनेका कोई कारण ही नहीं है।

प्रकृतिमें गुणोंका वैषम्य कालकी प्रेरणासे होता है। साम्यावस्था जब गुणोंको प्राप्त रहती है, प्रकृतिकी भी कोई प्रतीति नहीं। उस महाप्रलय-की स्थितिका सकेत भी सम्भव नहीं। संकेत तो सम्भव होता है तब, उसमें जब क्षोभ होता है। प्रकृतिके उस प्रथम क्षोभका नाम ही 'महत्तत्त्व' है।

महत्तत्त्व व्यक्तिमें बुद्धि और बुद्धि रजोगुण-तमोगुणसे विकृत होती है—क्षुब्ध होती है। बुद्धिका क्षोभ इतना बढ़ जाता है कि मनुष्य कुछ सोचने, कुछ निर्णय करनेमें असमर्थ हो जाता है। बुद्धिके अत्यन्त विकृत हो जानेका नाम ही 'उन्माद' है और उन्मादकी वृद्धि मृत्युका हेतु होती है।

व्यष्टिमें जो सत्य है, वह समष्टिका भी तथ्य है। महत्तत्त्वको कलियुग-में विकृति प्राप्त होती है। रजस्-तमस्की अत्यधिक अभिवृद्धिसे क्षोभ होता है। इस क्षोभके सहनेकी सीमा है। सहस्रबार कलियुगकी भी आवृत्ति जब इस सीमाको तोड़ने लगती है, प्रलय महत्तत्त्वका उन्माद ही तो है।

आप जानते हैं कि उन्मादका दौरा पड़ता है। पागल व्यक्ति उन्मादके प्रथम दौरेमें ही नहीं मरता। अनेक बार वह स्वस्थ हो जाता है। कलियुगके पश्चात् सतयुग आनेपर उन्माद-जैसा क्षोभ शान्त हो जाता है और द्वापरान्त-तक शान्त रहता है। कलिके पुनरागमनसे वह पुनः धीरे-धीरे प्रारम्भ होता है।

अन्ततः यह क्रम भी कहीं पूर्ण तो होना ही है। महाप्रलयका काल आता है और शेष सब तत्त्वोंका क्रमशः लय होनेपर अन्तमें महत्तत्त्वका भी लय हो जाता है। प्रकृति साम्यावस्था प्राप्त कर लेती है।

महाप्रलयका अर्थ है—ब्रह्माजी और उनके ब्रह्माण्डकी मृत्यु। इससे ब्रह्माजीकी मानसिक सृष्टि भी समाप्त हो जाती है। ब्रह्माके दिनान्तमें बचे रहनेवाले सत्य, तप, जन तथा महर्लोक भी लय हो जाते हैं।

——

अव्याकृत—

अव्याकृत, अर्थात् प्रकृति। 'अव्याकृत' शांकर-वेदान्तका शब्द और यह इसलिये कि प्रकृति किसी व्याख्याका विषय नहीं। उसकी व्याख्या ही नहीं होती; क्योंकि उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह न सत् है, न असत्। इसलिये उसे 'अनिर्वचनीय' कहा जाता है।

आप जानते हैं कि आपकी छाया हो या वृक्षकी, उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इसी प्रकार प्रकृति किसीकी होती है। स्वभाव कहते ही प्रश्न उठता है—किसका? परमात्माके अतिरिक्त भला प्रकृति और किसकी होगी।

प्रकृतिका प्रत्यक्ष तो होता नहीं। न प्रकृतिके गुणोंका प्रत्यक्ष होता है। कार्यके द्वारा उसके कारण रूपमें इनका अनुमान करना पड़ता है। सत्त्व, रज और तम, इन तीन गुणोंसे भिन्न तो प्रकृति कुछ है नहीं। ये तीनों गुण भी छायात्मक हैं। परमात्माके सच्चिदानन्दस्वरूपकी छाया।

छायाकी पृथक् सत्ता भले न हो; किन्तु वह सक्रिय होती है। उससे अनेक कार्य होते हैं और अपने आधारके अनुरूप होकर भी उसमें अपनी अनेक विशेषताएँ होती हैं। जैसे वृक्षकी छाया धूपसे बचाती है। शीतल होती है और वृक्षसे छोटी या बड़ी होती रहती है। वृक्ष बेचारा ज्यों-का-त्यों खड़ा है, किन्तु छाया स्थान तथा आकार बदल रही है।

परमात्मा एकरस, निर्विकार, निरञ्जन हैं; किन्तु प्रकृति उसकी होकर भी परिवर्तनशील है। छाया होनेसे मायारूपा है। अज्ञानान्धकारके माध्यम-से उसका सब व्यापार-व्यवहार चलता है।

महाप्रलयमें गुणोंकी साम्यावस्था स्थापित होनेपर प्रकृति कहाँ, कैसे रहती है? यह प्रश्न इसलिये व्यर्थ है, अतिप्रश्न है; क्योंकि बुद्धितत्त्वके लय-के पश्चात्की स्थिति जाननेका कोई उपाय नहीं। वैसे आप भी जानते हैं कि सूर्यास्तके पश्चात् वृक्षकी छायाका क्या होता है?

वस्तुतः प्रकृति भी कोई विचित्र तत्त्व नहीं है। जैसे पृथ्वी, जल आदि सब मनुष्य ही अपने कर्मानुसार बनता है, प्रकृति भी वही बनता है और

महाप्रलयका अर्थ प्रकृतिकी भी मृत्यु ही है। वृक्षकी छायाका अस्तित्व होता तो प्रश्न उठता कि कल प्रभातमें जो छाया थी, वही आज प्रकट हुई या नहीं ? लेकिन छायाका तो अस्तित्व ही नहीं है। वह तो प्रकाशके अवरोध-का परिणाम है। इसी प्रकार प्रकृतिकी अपनी सत्ता नहीं है। महाप्रलयमें प्रकृति लीन हो गयी परमात्मामें। अब नवीन सृष्टिमें वह प्रकृति बनकर प्रकट होगा, जो उससे पूर्व महत्तत्त्वके रूपमें सक्रिय रहा था।

क्रममुक्तिका अन्तिम क्रम प्रकृति, अर्थात् अव्याकृत स्वरूपकी प्राप्ति। इसके पश्चात् जब महाप्रलय होगी, प्रकृति परमात्मामें लय हो जायगी। अब मायाका अस्तित्व ही नहीं रहा। अविद्या तो तभी मिट गयी थी, जब महत्तत्त्वके रूपकी प्राप्ति हुई; किन्तु तब भी भेद बना रहा था। सविशेषत्व शेष था। प्रकृतिकी दृष्टिसे तो प्रपञ्च है ही नहीं। जैसे आकाशकी व्यापकता-की दृष्टिसे पदार्थकी सत्ता नहीं है।

क्रममुक्तिमें कितना समय लगा, यदि आप यही गणना करने बैठें तो भी कोई निश्चित निर्णय अत्यन्त कठिन है; क्योंकि आकाशका लय सीधे अहकारमें होगा या पहले तन्मात्राओंमें होगा, यह अनिश्चित है।

यदि तन्मात्राओंमें लय हुआ तो आकाशके लयके पश्चात् गन्ध-तन्मात्राका रसमें, रसका रूपमें, रूपका स्पर्शमें, स्पर्शका शब्दमें, शब्दका मनमें और मनका बुद्धिमें लय होकर तब बुद्धिका अहंमें लय होगा। अहंका महत्में और महत्का प्रकृतिमें तो लय होगा ही। तत्त्वोंकी स्थिति सृष्टिके पूरे समय रहती है और उनका तत्त्वान्तर रूप प्रलयकाल समाप्त होनेपर प्रकट होता है।

आप स्वयं अब गणना कर सकते हो कि मनुष्य यदि निर्गुणका पथ पकड़कर इसी जन्ममें मुक्त नहीं हुआ, किसी प्रलोभनमें पड़ गया और सिद्ध-लोक पहुँच गया तो उसके मुक्त होनेमें क्रममुक्ति कितना समय लेगी।

यदि सौभाग्यवश वह आकाशसे सीधे अहंकारसे एक हो पाता है तो सृष्टि-प्रलयके सम्पूर्ण कालकी (मनुष्यसे सिद्ध होनेको भी सम्मिलित करके) नौ आवृत्ति करनी पड़ेगी।

यदि वह आकाशसे सीधे अहंमें एक नहीं हो पाता, तन्मात्राओंसे एकत्व-प्राप्तिका क्रम चल पड़ता है तो सात आवृत्तियाँ और बढ़ जाती हैं।

इन दोनों क्रमोंमें-से किसकी प्राप्ति होगी, यह इसपर निर्भर है कि अपने मनुष्य-जीवनमें वह तत्त्व-चिन्तनमें किस प्रक्रियाका आश्रय लेता रहा है। वह यदि लय-चिन्तन ही न करता रहा हो, विशुद्ध दृष्टि-सृष्टिवादी रहा हो तो उसे प्रथम क्रम प्राप्त होगा, यही सम्भावना अधिक है।

यहीं यह स्पष्ट हो जाना अच्छा है कि कालका जो महत्व आप इस समय समझ रहे हो, वह बहुत ही भ्रान्तिमूलक है। काल कोई सुनिश्चित सत्य नहीं है। काल एक सापेक्ष सत्य है। आप अनुमान नहीं कर सकते कि जिन कीटोंका जीवन घड़ी-दो-घड़ीका है, उनका दिन कितना बड़ा होगा। इसी प्रकार आप यह भी अनुमान नहीं कर सकते कि अमर पुरुषोंको, ब्रह्माजीको या महर्षि लोमशको आपका जीवन कितना क्षणिक लगता होगा।

आप जब स्वप्न देखते होते हैं तो उस समय जो सुख या दुःख वर्षों भोगते हैं, क्या स्वप्न देखते समय वह वर्षोंका समय छोटा लगता है? उसे छोटा तो आप जागनेके पश्चात् जानते हैं।

जीव जिस योनिमें, जिस अवस्थामें रहता है—उसे वह अपना पूरा जीवन ही प्रतीत होता है। अतः यदि आपको क्रममुक्तिके कालका ही अनुमान करना हो तो उसको गणना सृष्टि-प्रलयकालके रूपमें करना गलत होगा। उसकी गणना केवल इस रूपमें करनी चाहिये कि उस क्रममुक्तिसे चलनेवालेको कितने रूप प्राप्त हुए, अर्थात् वह कितने जन्मोंके पश्चात् परमतत्त्वसे एक हो सका।

यह गणना बहुत बड़ी नहीं है। अधिक-से-अधिक सोलह ही कही जा सकती है। यह भी इसलिये कि प्रतिबन्ध बना रह गया। शरीरके सुख-सम्मानकी वासनाका समूलोन्मूलन नहीं हुआ। अपनी विशेषता समाप्त नहीं हुई थी।

श्रुति तो ज्ञान समकाल मुक्ति मानती है। अविद्याका आवरण समाप्त हुआ तो एक अद्वितीय निर्विशेष निर्विकार परमसत्य रहा। उसमें न अपनापन, न परायापन। उसमें संसार ही स्वप्न होकर केवल आभास रह गया तो अपने नाम-रूपकी विशेषता और विश्वको विशिष्ट बनाने—सुधारनेकी सनक शेष रहेगी?

रहती है—रह ही जाती है कभी किसीमें। कहना यह चाहिये कि अधिकांशमें रह जाती है। कम ही निकलते हैं, जो इस स्वर्णिम प्रलोभनसे भी पार हो जायँ। ऐसे न निकलते होते तो सद्योमुक्ति (जीवन्मुक्ति) और विदेहमुक्तिका वर्णन ही क्यों शास्त्रोंमें होता। जो निकलते हैं, वे शुकदेव-वामदेवके समान अवधूत होते हैं, अथवा जनकके समान सक्रिय रहे भी तो नगर और सदनमें लगी अग्निकी भी चिन्तासे परे होते हैं।

जो ऐसे नहीं हो पाते—अधिकांश नहीं हो पाते; क्योंकि सभी हो जाते तो पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, सूर्य, चन्द्र आदि कौन बनते। प्रकृतितक भी इन्हीं समर्थोंको बनना है। अत: जो क्रममुक्तिके मार्गसे चल पड़ते हैं, वे भी परम समर्थ हैं। सृष्टिकर्ताका अधिकांश दायित्व उन्हींपर रहता है। सृष्टि उनके ही विविध स्वरूपोंपर आश्रित है। वे भी सम्मान्य हैं और सामर्थ्यवान् तो हैं हीं। निर्गुणतत्त्वमें तो सामर्थ्य-असामर्थ्यकी चर्चा ही नहीं चल सकतीं।

॥ क्रममुक्ति-खण्ड समाप्त ॥

सगुण–संक्रमण

श्यामकी सहमति—

अनन्त अत्यन्त अल्हड़ तो था; किन्तु उसे किसी प्रकार साधक नहीं कह सकते। उसमें न स्थिरता थी, न संयम। उसने बहुत-से व्यसन बना रखे थे; किन्तु उनमें कोई शास्त्र-विरुद्ध नहीं था। कहना यह चाहिये कि वह कुतूहली था, इसलिये अनेक विषयोंको जाननेका प्रयत्न करता था। यह बात जहाँ वाह्य विषयोंमें, वहीं आन्तर विषयोंमें भी। उसने जहाँ पत्थर, पानी, मिट्टीके भेदोपभेदोंमें कुछ रुचि ली, वैद्यक, वनस्पति-विज्ञान और ग्रह-गणितको भी अछूता नहीं छोड़ा। लेकिन उसमें स्थिरता होती, तब तो किसीका पारंगत पण्डित बनता। उसकी विद्या पल्लवग्राहिणी बनी रही।

इसी प्रकार आन्तर विषयोंमें भी उसने हठयोग, लययोग, ध्यानादि सभीमें रुचि ली। दर्शनोंको भी सूँघा; किन्तु जमकर कुछ करना जिसके स्वभावमें नहीं, उसके साधनकी सफलताका क्या अर्थ !

कोई एक विद्या या एक साधन-निष्ठा चाहता है। सम्पूर्ण जीवन भी उसमें खपा देना अल्प समय माना जाता है। तब उस विद्या या साधनका मर्म प्रकट होता है। पल्लवग्राही प्रयत्न इन क्षेत्रोंमें केवल व्यक्तिको अस्त-व्यस्त बनाता है और उसका जीवन किसी प्रकार ही बीतता है।

यह सब अपने स्थानपर सत्य है; किन्तु मैया यशोदाका लाड़ला तो किसी नियमके बन्धनमें आता नहीं। कमललोचन कन्हाईको कब क्या रुचेगा, कब वह किसके कंधेपर अपनी विशाल भुजा धरकर उसे अपना कह देगा, कोई नियम तो है नहीं। नियम कहिये या स्वभावकी विवशता, कन्हाईके साथ भी है। यह मयूरमुकुटी किसीको अपनाकर छोड़ना नहीं जानता। जिसे अपना कहा, कह दिया। अब सदाको यह उसका।

किसका साहस है, जो कन्हाईपर कोई नियम-बन्धन लगावे ? इसलिये यह गोपकुमार जिसे अपना कह दे, नियम उसके भी निकट फटका नहीं

करते। उसका भी सृष्टिमें कोई शासक नहीं रह जाता। वह भी सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हो जाता है।

'तू मेरा नहीं।' किसी अचिन्त्य परम शुभ घड़ीमें बाबा व्रजराजके कुमारने ही कह दिया—'मैं तेरा' और हो गया, अब अनन्तके लिए कहीं कोई कर्तव्य शेष रहा भी हो तो वह कहना सीख गया—'कन्हाई कर लेगा।'

अनन्तके कुतूहली स्वभावने और इस निश्चिन्तता, निरपेक्षताने कि 'कन्हाई कर लेगा' उसे बहुत भटकाया भी, भ्रमण भी कराया; किन्तु कहीं न कुण्ठित होना जाना उसने और न कोई कष्ट माना।

अत्यन्त कुतूहली अनन्त। अनेक बार वह सोचता था—'चींटी या दीमकका दिन कितना बड़ा होगा ? उन कीटोंका दिन कितना बड़ा होगा, जिनका जीवन ही कुछ घड़ी या क्षणका होता है ?'

वर्तमान विज्ञान भी इस विषयमें अभी कोई बड़ी जानकारी नहीं अर्जित कर सका है और अनन्त तो विज्ञानका विद्यार्थी भी नहीं रहा। सुना है कि योगके द्वारा मनुष्य सब जान लेनेमें समर्थ हो जाता है; किन्तु अनन्त कहाँ योगी बना। योगके लिए जो स्थिरता अपेक्षित है, वह उससे बहुत दूर। फिर वह कहता है—'आँख बंद करके काला अँधेरा देखने या किसी बिन्दुकी कल्पना करनेसे बहुत बड़ी बुद्धिमानी यह सोचना है कि कन्हाई हँसता है तो इसकी अलकें, उदर, वनमाला हिलती कैसी लगती हैं।'

'तू चींटी या दीमक बनेगा ?' कन्हाईने पूछ लिया। क्योंकि इसे कुछ अटपटा ही नहीं लगता। जो स्वयं कछुआ, मछली, वाराह बनता रहा, उसे कुछ भी बनना केवल क्रीड़ा ही तो लगेगी।

'उँहुँ' अनन्तने सिर हिला दिया—'मैं चींटी बनूँ तो केवल तेरी इस नाभिमें बिल बनाकर बसूँगा।'

'चल !' कन्हाईने अपनी नाभि देखी। आपको अपनी नाभिमें कोई चींटी-पालना प्रिय लगेगा ? नन्दनन्दन हँस पड़ा। इसने ही कहा—'तू नन्हा मत बन। बहुत बड़े भी है और उनके दिन भी बहुत बड़े होते हैं।'

'तू कितना बड़ा बनेगा ?' अनन्तको अपने कन्हाईको छोड़कर कहीं रहना स्वीकार नहीं और कन्हाई साथ रहे तो छोटा-बड़ा कुछ बननेमें आपत्ति नहीं—'मैं तुझसे बड़ा तो हूँ ।'

'तब तू एक-एक दिन सबके यहाँ घूम आना ।' श्यामने मध्यका उपाय निकाला । इस व्रजराजकुमारको कितनी युक्तियाँ सूझा करती हैं, कोई ठिकाना नहीं है ।

'हाँ, मैं घूम आऊँगा ।' अनन्तको यात्रा प्रिय है । जीवनमें भी घुमक्कड़ ही रहा यह । कहीं भी चल देनेकी योजना बनाते इसे कभी देर नहीं लगती थी । 'तू मेरी प्रतीक्षा करेगा ?'

'सो तो करूँगा ही ।' कन्हाईका स्वर किंचित् भारी हो गया । अपनों-के अल्प क्षणोंके पार्थक्यकी कल्पना भी इस सुकुमारको सह्य नहीं ।

'तू मेरी व्यवस्था करता रहेगा ?' पूछना यह चाहिये था; किन्तु अनन्तके मनमें ही यह प्रश्न नहीं उठा । यह भी कोई पूछनेकी बात है, जो सदा-से व्यवस्था करता रहा है, वह अब कहीं शयन करने तो जा नहीं रहा । व्यवस्था किये बिना उससे स्वयं रहा नहीं जाता, तब उससे कहनेकी आवश्यकता ?

'क्या बनेगा तू ?' कन्हाईने पूछ लिया । जब इस गोपालको ही बनाना है तो कर्म और प्रारब्धके सम्बन्धकी चर्चा क्यों की जाय ।

'तू क्या बनने जा रहा है ?' अनन्त झल्लाया—'तू साथ चल नहीं रहा, प्रतीक्षा करेगा तो मैं कुछ क्यों बनूँगा ?'

यह अच्छी रही । स्वयं प्रतीक्षा करनेको कहना और स्वयं उसकी स्वीकृतिपर रूठना भी; किन्तु श्यामके साथ यह सब चल सकता है । कन्हाई किसीको उलाहना देना नहीं जानता और आप जानते हो कि जीव अल्पज्ञ है । उससे भूलें तो होती ही रहेंगी । शिशु स्वयं गिरकर चोट खाता है तो माताकी नाक नोचता है या नहीं ? दायित्व सब बड़ेपर होता है; किन्तु अनन्त है कि कन्हाईसे अपनेको बड़ा भी कहता—मानता है और दायित्व भी उसीपर डालता है ।

'तब तू चींटी, दीमक आदि छोटोंकी ओर मत जा।' श्यामने सहज-भावसे कहा—'तू उनके विलोंमें ऐसे तो समा नहीं सकता। तुझे अपनों-से बड़ोंकी ओर यात्रा करनी चाहिये।'

'किसी बिलमें घुसने-बसनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है।' अनन्तको भी अच्छा लगा कि वह अपनों-से बड़ोंके यहाँकी यात्रा करेगा। 'लेकिन उनके शिष्टाचार········ ?'

'तुझे उसकी चिन्ता नहीं करनी।' कन्हाईने निश्चिन्त कर दिया—'मुझसे भी कोई आशा नहीं करता कि मैं उसके शिष्टाचारको निभाता रहूँगा।'

हम-आपने कब आशा की कि कोई चींटी-मक्खी हमारे समीप आवे तो हमारे शिष्टाचारका पालन करे। यद्यपि देवतादिके लिए मनुष्य ऐसा उपेक्षणीय नहीं है; किन्तु शक्तिकी दृष्टिसे तो स्थिति इससे भिन्न नहीं है।

अनन्तको पता नहीं था कि उसके मानव-शरीरकी समाप्तिका समय समीप आ गया है। वह तो अपने कन्हाईके सामीप्यमें शरीर—संसार सब भूल गया था; किन्तु सहसा श्याम अदृश्य हुआ और उसे अद्‌भुत लोग दीखने लगे।

तेजोमूर्ति, कोई जटाधारी और कोई मुकुट-मण्डित। लेकिन कोई उग्र या भयानक नहीं। सब सौम्य, स्नेहपूर्ण और सबके-सब विनम्र।

'आप हमारा एक दिनका आतिथ्य स्वीकार करके आगे जायँगे तो हम अपनेको कृतार्थ मानेंगे।' सबकी एक ही प्रार्थना थी।

अनन्तने किसीको निराश नहीं किया। किसीकी प्रार्थना अस्वीकार नहीं की। कन्हाई अपना है और प्रतीक्षा करेगा। उसके पास पहुँचनेकी शीघ्रता है नहीं। कन्हाई प्रतीक्षा करेगा तो मध्यमें रोक लेनेका साहस-शक्ति भी किसीमें नहीं। शङ्काका कोई कारण नहीं। केवल एक-एक दिनका ही तो आतिथ्य स्वीकार करना है।

अनन्तने अनेकोंको पहचान लिया। इन्द्रको उसने पहचानकर भी महत्ता नहीं दी। चतुर्मुख ब्रह्मा बाबाको प्रणाम करके आमन्त्रण स्वीकार

किया। लेकिन जब भगवान् विष्णु दीखे—वह उत्साहमें आ गया। उसने स्वयं कहा—'मैं अम्बाके समीप अवश्य आना चाहता हूँ।'

सबसे अन्तमें दीखे वृषभवाहन नीललोहित शशाङ्कशेखर रुद्र। अनन्तने उनको प्रणाम करके उनका हाथ पकड़ा—'बाबा! आप अकेले क्यों हैं? अम्बा कहाँ हैं?'

'वे कैलाशपर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।' उन आशुतोषने कहा—'तुम एक दिन हमारा भी आतिथ्य स्वीकार करके तब अपने सखाके समीप जाओगे।'

'मैं आपके साथ चलूँ?' कहकर भी अनन्त संकुचित हो गया। उसे बैलपर बैठना बहुत अरुचिकर है और बाबा तो वृषभ-वाहन हैं।

'तुमने अभी अनेकोंको उनका आतिथ्य स्वीकार करनेका वचन दिया है।' भगवान् रुद्रने ही कहा—'तुम सबको संतुष्ट करते आओ! मैं कुछ क्षण प्रतीक्षा कर लूँगा।'

अनन्तको स्मरण ही नहीं आया कि उसका मानव-शरीर चेष्टाहीन पड़ा है। शरीरसे कब वह पृथक् हुआ, इसका भी उसे पता नहीं लगा। उसे तो लगा ही नहीं कि कोई परिवर्तन भी हुआ है।

——

पितरोंका प्रसाद—

'अर्यमाका आप स्वागत स्वीकार करें !' अचानक एक ज्योतिर्देह सम्मुख उपस्थित हुए अनन्तके। उन्होंने स्वयं अपना परिचय दिया—'मैं इस माधव (वैशाख) मासका सूर्यमण्डलका संचालक अदिति-पुत्र हूँ।'

भगवान् रुद्रके अन्तर्हित होते ही अर्यमा अनन्तके सम्मुख आ गये—'आपको हम पितृयानसे ले जानेका साहस नहीं कर सकते; किन्तु इस मासमें सूर्यमण्डल भी मेरे ही निरीक्षणमें है। अतः आप पधारें। पितृलोकके पितर आपका आतिथ्य करनेको उत्सुक हैं।'

'सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता तो भगवान् नारायण हैं ?' अनन्तने पूछा।

'वे सर्वेश्वर तो सर्वत्र हैं और वे ही सूर्यमण्डलके माध्यमसे उपासित भी होते हैं।' अर्यमाने कहा—'हमारा परम सौभाग्य है कि वे हमारी माता अदितिके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए। हमारे अनुज होकर उन उरुक्रम (वामन)ने सूर्यमण्डलका भी संचालन फाल्गुनमें स्वीकार किया है।'*

'सूर्यमण्डलके और दस संचालक ?' अनन्तके मनमें जिज्ञासा हुई।

देवताओंको वाणी-व्यवहारकी वहुत आवश्यकता नहीं होती। वे संकल्पग्राही होते हैं। अतः अर्यमानें स्वतः कहा—'सूर्यमण्डल तो एक ही है; किन्तु ज्येष्ठमें उसके संचालक मेरे भाई 'मित्र' होते हैं। आषाढ़में 'वरुण', श्रावणमें 'शक्र', भाद्रमें 'विवस्वान्', आश्विनमें 'पूषा,' कार्तिकमें 'क्रतु'

---

* देवमाता अदितिके द्वादश पुत्र हैं—(१) विवस्वान्, (२) अर्यमा, (३) पूषा, (४) त्वष्टा, (५) सविता. (६) भग, (७) धाता, (८) विधाता, (९) वरुण, (१०) मित्र, (११) शक्र (इन्द्र), (१२) उरुक्रम (वामन) (भागवत–६।६।३९) —ये सब माताके नामसे 'आदित्य' कहे जाते है। इनमेंसे प्रत्येक एक-एक महीने सूर्यमण्डलका संचालक रहता है, एक (भागवत–१२।११।३३ से ४४) इनमेंसे विधाताका एक नाम 'क्रतु' है और सविताका नाम 'अंशु'। जैसे शक्रका दूसरा नाम 'इन्द्र' और उरुक्रमका दूसरा नाम 'वामन' है, त्वष्टाका दूसरा नाम 'विश्वकर्मा' है।

(विधाता), मार्गशीर्षमें 'अंशु' (सविता), पौषमें 'भग', माघमें 'त्वष्टा' और चैत्रमें 'धाता'।*

अनन्त अर्यमाके साथ पितृलोक पहुँचा। उसे सूर्यमण्डल होकर देव-यानसे ले जाया गया; किन्तु वहाँसे वह चन्द्रलोक गया। पितृलोक चन्द्रलोक है, यह सत्य है; किन्तु पितर सूक्ष्मदेही हैं। उनको कोई बाधा नहीं पड़ती यदि कोई स्थूल यन्त्र अथवा मनुष्य चन्द्रमापर पहुँचता है। वह पहुँचनेवाला पितरोंकी विद्यमानताका पता भी नहीं पा सकता।

अर्यमा मुख्यरूपसे पितृलोकके अधिपति हैं, यह अनन्तको पहलेसे पता था। वहाँ जो उसका स्वागत करने सात मुख्य पुरुष आगे आये, उनका परिचय उसे अर्यमाने ही दिया।

"ये भगवान् विराट्से स्वयं प्रकट, उनके पुत्रस्वरूप 'सोमसद्' हैं।" अर्यमाने अनन्तको समझाया कि सोमसद् और इनके समीप खड़े दो दिव्य-पितर हैं। इन्हें श्राद्ध-भाग पानेकी आवश्यकता नहीं होती। ये केवल उनका संरक्षण करते हैं, जिन्होंने इनको अपना पितर माना है। जैसे साध्यगणोंने सोमसद्जीको अपना पितर स्वीकार किया है।

'ये महर्षि मरीचिके पुत्र अग्निष्वात्ता। सुरोंके ये त्रिभुवन-सम्मानित पितर हैं और ये महर्षि अत्रिके पुत्र बर्हिषद दैत्य-दानव, गन्धर्व, यक्ष-राक्षस, नाग-उरग, सुपर्ण-किंनर, वानर-रीछ, अप्सरादि सभी उपदेव जातियोंके पितर हैं।'

ये तीन तो दिव्य पितर। इन्हें श्राद्ध-भागकी अपेक्षा नहीं। इनको नित्यतृप्ति प्राप्त है।

अर्यमाने अब पृथ्वीके मानवोंके नित्य-पितरोंका परिचय दिया—'ये महर्षि भृगुके पुत्र सोमप ब्राह्मणोंके पितर हैं। ये महर्षि अङ्गिराके पुत्र हविष्मन्त क्षत्रियोंके पितर हैं। ये महर्षि पुलस्त्यके पुत्र आज्यप वैश्योंके पितर हैं और ये महर्षि वसिष्ठके पुत्र सुकालिन शूद्रों तथा अन्य वर्ण-बाह्योंके पितर हैं। (मनुस्मृति ३।१९५ से १९९)

---

* क्योंकि ये सूर्यमण्डलके सब संचालक आदित्य (आदिति-पुत्र) हैं, अतः सूर्यका नाम भी 'आदित्य' पड़ गया है।

'ये नित्य पितर हैं। मनुष्यलोकसे इस लोकमें आये अपने वर्गके प्राणीको उसके वंशधर जो कव्य भेजते हैं, उसकी व्यवस्था ये करते हैं।'

'किस प्रकारके कर्मसे मनुष्य आपके लोक आते है ?' अनन्तका प्रश्न उचित था। मनुष्यकी गति तो कर्मानुसार होती है।

'भद्र ! यह प्रतीक्षालोक है। यहाँ किसीके अपने कर्मका उदय उसे नहीं ले आता।' अर्यमाने सूचित किया—'मनुष्यके कहीं जन्म ले सकनेकी परिस्थिति जबतक कर्म-नियन्ताको न प्राप्त हो, तबतक उसे यहाँ रहना पड़ता है। अतः यहाँ उसे केवल अपने उत्तराधिकारियोंद्वारा प्रदत्त श्राद्ध-भाग प्राप्त होता है।'

'यदि किसीके उत्तराधिकारी श्राद्ध न करें ?' अनन्तका प्रश्न स्वाभाविक नहीं हैं, ऐसा तो कहा नहीं जा सकता।

'सतयुग, त्रेता, द्वापरमें ऐसे अकृतज्ञ नहीं हुआ करते।' अर्यमाने अत्यन्त खिन्न होकर सूचित किया—'किन्तु कलियुगमें ऐसे अकृतज्ञ, अधर्मी बहुत होते हैं, जो पितादिकी सम्पत्तिके तो स्वामी बन जाते हैं; किन्तु उन्हें जलाञ्जलितक नहीं देते। ऐसे पितरोंको उपोषित, पिपासित रहना पड़ता है। मानसिक क्षुधा-पिपासाकी उनकी व्यथा दूर करनेमें हम समर्थ नहीं हैं; क्योंकि हमारे इस लोकमें तो कोई भोग है नहीं।'

'भद्र ! अभी हमारे इस लोककी रात्रि समाप्त नहीं हुई।' सोमसदजीने ही कहा—'आप मनुष्यलोकसे वैशाख शुक्ल तृतीयाको चले थे। यहाँतक आगमनमें और हमारे प्रमादसे इस परिचर्यादिमें अधिक समय लग गया। अब हमारा ब्राह्ममुहूर्त समीप है। हमारा सौभाग्य है कि आज प्रातः संध्याकालमें आप-जसे साक्षात् अतिथिको हम अर्घ्य अर्पित कर सकेंगे। आपको क्या प्रिय होगा, सोम या तिलोदक ?'

'सुरोंके लिए भी स्पृहणीय सोमको अर्घ्यादिका माध्यम बनाना समुचित नहीं होगा।' अनन्तने कहा—'और आपके द्वारा अर्घ्य प्राप्त करनेका मैं अधिकारी नहीं हूँ। महर्षि वसिष्ठके सम्मान्य सुत सुकालिन भी मेरे वन्दनीय हैं। आपके यहाँ मृत्युलोकसे आये सामान्य पितर भी तो हैं।'

'अतिथि सबका पूज्य होता है।' अनन्तका आग्रह अर्यमाने स्वीकार नहीं किया—'पितृलोकको तो पहली बार अतिथि-सत्कारका अवसर मिला है। यहाँ तो नित्य परिव्राजक देवर्षि भी दर्शन देने नहीं आते।'

अनन्तको अर्घ्य, पाद्य स्वीकार करना पड़ा। उसने सोमपान अस्वीकार कर दिया। उससे अधिक आग्रह किया नहीं जा सकता था और उसे मानसिक क्षुधा-पिपासाका अनुभव नहीं हो रहा था।

'आप नित्य पितृगणोंका आहार ?' अनन्तने देखा कि पितृलोकमें असंख्य पितर हैं। कुछ अत्यन्त सुप्रसन्न और कुछ बहुत खिन्न। धरापर जिनका सविधि श्राद्ध होता है, उनकी तृप्ति प्राप्त होती है। उन्हें सुप्रसन्न देखा जा सकता है; किन्तु श्राद्धवर्जित पितर अत्यन्त खिन्न हैं। उनकी अवस्था कुछ वैसी है, जैसे सकाम मनुष्यकी कामनाकी अपूर्तिमें रहती है। 'यहाँ अनेक अनाहार भी मैं संतुष्ट--तृप्त देखता हूँ।'

'हमारा मुख्य आहार तो चन्द्रज्योत्स्नासे प्राप्त सुधा है। वह हमें दिनभर सुलभ रहती है।' अग्निष्वात्ताने कहा—'धरासे आये उन पितरोंको भी श्राद्ध-भागकी आवश्यकता नहीं, जिनको नित्यतृप्ति प्राप्त है।'

'नित्यतृप्ति ?' अनन्तको थोड़ा आश्चर्य हुआ।

'सर्वेश्वरने सृष्टिमें इसका भी विधान किया है।' वर्हिषद बोल रहे थे—'जैसे, जिनके वंशधर पृथ्वीपर गयातीर्थमें या श्रीबदरीनाथमें श्राद्ध कर लेते हैं, उनके पितरोंको यहाँ रहनेतक नित्य-तृप्ति प्राप्त हो जाती है।'

'आपका यह दिन कितना बड़ा है ?' अनन्तको अभी पृथ्वीके मानव-दिनका संस्कार सर्वथा छोड़ नहीं रहा था। उसे अभी पितृलोकका समय अटपटा लग रहा था। वह संस्कार अब तो नहीं रहा था; किन्तु जैसे कुछ विचित्र हो रहा हो और वह समझमें न आता हो।

''मनुष्यलोकमें आप जिसे कृष्णपक्ष कहते हैं, वह हमारा दिन है।'' सोमपने स्पष्ट किया—'वहाँ जो शुक्लपक्ष कहा जाता है, वह हमारी रात्रि है। हमारे विश्रामका समय।''

'ऐसा उलटा क्रम क्यों ?' अनन्तने पूछा। उसे तो शुक्लपक्ष दिन होनेके उपयुक्त लगता था।

'आप पृथ्वीसे आये हैं, इसलिये आपको हमारे यहाँका क्रम उलटा लगता है।' हविष्मन्तने कहा—'पृथ्वीको चन्द्र-किरणोंकी वर्धमान गति शुक्लपक्षमें प्राप्त होती है; किन्तु इस समय आप चन्द्रपृष्ठपर हैं। हमको कृष्ण-पक्षमें ज्योत्स्ना प्रारम्भसे मिलती है।'

अनन्तको सम्पूर्ण पितृलोक देखना था। अर्यमाने उसे दिखलाया भी; किन्तु पितृलोकमें तो ऐसी कोई विविधता नहीं मिली, जिसकी ओर अनन्त आकर्षित होता।

अनन्तका आतिथ्य अर्यमाने अमृतके द्वारा किया; क्योंकि किसीके श्राद्धका भाग वह स्वीकार नहीं कर सकता था। उसकी कोई रुचि नहीं थी। अमृत भी उसने अनिच्छापूर्वक अर्यमाके आग्रहसे ही स्वीकार किया। उसे कोई अतृप्ति नही थी; किन्तु अतिथिको अर्यमा उपोषित भी तो विदा नहीं कर सकते थे।

ज्योत्स्ना-धवल, स्निग्ध-शीतल दिवस पितृलोकका। लेकिन जैसे ही चन्द्रिका म्लान पड़ने लगी, ऊष्मा बढ़ने लगी। स्पष्ट हो गया कि वहाँका संध्याकाल समीप आ रहा है।

'आप यहाँ रात्रि-शयन करेंगे ?' आज्यपने पूछा। वे इसकी व्यवस्था करनेको उत्सुक थे।

'मैं यहाँ रात्रिमें आया था। आपके यहाँकी रात्रि मैंने देख ली।' अनन्तने अस्वीकार कर दिया वहाँ रात्रि-शयन। 'आप सबको मैंने आपके पूरे दिन व्यस्त रखा। अब आप अनुमति दें।'

'आप जानते हैं कि मैं आदित्य हूँ।' अर्यमाने कहा—'आप अनुमति दें कि आपके साथ अमरावती चलकर मैं माताकी चरण-वन्दना करूँ। इसमें आपको तो कोई असुविधा होनी नहीं है।'

अनन्तको यह प्रस्ताव आपत्ति करनेयोग्य नहीं लगा।

—

सुरोंका स्वागत—

अमरावतीके उत्तर-द्वारपर अनन्तका स्वागत करनेको सुरेन्द्र अपने पूरे-समाजके साथ समुपस्थित मिले। यद्यपि उस समय स्वर्गका रात्रिकाल प्रारम्भ हो चुका था; किन्तु इन्द्र तो इतनी शीघ्र शयन नहीं किया करते।

श्रुतियोंके सस्वर पाठके साथ सुरगुरुने स्वस्तिवाचन करके आशीर्वाद दिया। अनुमति लेकर अर्यमा देवमाता अदितिकी वन्दना करने चले गये।

'आप हमारी सुधर्मा-सभाको अभी धन्य करेंगे ?' स्वागतके पश्चात् इन्द्रने पूछा। उनका तात्पर्य था कि अतिथि संगीत-नृत्यके समारोहमें कुछ समय व्यतीत करना चाहेंगे, अथवा विश्राम करेंगे।

'मुझे केवल तभी वाद्य-संगीतमें सुख मिलता है, जब श्यामके सुयश-का, लीलाका, अथवा उसके नामका कीर्तन हो।' अनन्तने बिना संकोच बतला दिया—'अन्यथा वाद्योंमें केवल शङ्खध्वनि प्रिय है मुझे और मेरे श्रवण संगीतके आलाप-विलाप समझते ही नहीं। मुझे यह सब अनावश्यक प्रलाप लगता है।'

'आपकी उपस्थितिमें आपके सखाके सुयशके अतिरिक्त अन्य-विषयक संगीतका साहस कौन करेगा।' सुरेन्द्रने सहास्य कहा—'किन्तु आप आज्ञा दें तो आपके सम्मुख गन्धर्व-अप्सराएँ किसी व्रजलीलाका भी अभिनय प्रस्तुत कर सकते हैं। हमारे यहाँके इस कलाकार-समाजको प्र तुत होनेमें समय नहीं लगा करता।'

'किसी भी वनलीलाका अभिनय मुझे अच्छा लगेगा।' अनन्तने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

'मैं अपने पूरे समाजकी ओरसे अञ्जलि बाँधकर पहले ही क्षमा-याचना करता हूँ।' अचानक गन्धर्वराज तुम्बुरु आगे आ गये—'हममेंसे किसीके कण्ठमें न व्रजका वह स्वर-लालित्य है, न सौन्दर्य और न उतनी उत्कृष्ट कला। हम उसकी छाया भी नहीं छू पाते। केवल अपनी असंगत उछल-कूद और अटपटे प्रयाससे आपको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करेंगे।'

'कन्हाई कौन बनेगा ?' अनन्तने ही पूछ लिया ।

सब कई क्षण स्तब्ध, मौन रह गये । अन्तमें तुम्वुरुने ही कहा—'आप जानते हैं कि आपके सखाका कृत्रिम अनुकरण करनेयोग्य भी त्रिभुवनमें कहीं कोई नहीं है । हम तो कुसुमधन्वाको इसका कुछ अधिकारी मानते हैं ।'

'उसमें कन्हाईकी कुछ छाया है, ऐसा सुना तो है ।' अनन्तने सोचकर कहा—'यदि वह संकोच न करे तो अभिनय अच्छा होगा ।'

देवताओं, गन्धर्वों, अप्सराओं आदिको कोई शृंगार तो करना नहीं पड़ता । यह वर्ग तो कामरूप है । संकल्प करते ही अभीष्ट रूप बन जाता है इनका ।

देवता अनिमेष होते हैं । सत्त्वाधिक्यके कारण उनके लिए निद्रा आवश्यक नहीं होती । स्वर्ग कोई साधन-लोक नहीं है कि वहाँ ब्राह्ममुहूर्तमें स्नान-संध्याका क्रम चलेगा । स्वर्ग तो भोगलोक है । वहाँ अविराम आमोद-प्रमोदके सब अभ्यासी हैं । अतः पूरी रात्रि आनन्दपूर्वक अभिनय चलनेमें कोई बाधा नहीं थी । केवल सुरगुरु अनन्तको सूचित करके अपने आश्रमपर चले गये ।

अनन्तको आरम्भसे अन्ततक अभिनय केवल अभिनय लगता रहा । एक क्षणको भी उसे अभिनयमें स्वाभाविकता नहीं लगी । एक बार भी वह उठकर स्वयं सम्मिलित होनेको उत्सुक नहीं हुआ ।

गो-चारण और दधि-दानका अभिनय किया सुरों, सुराङ्गनाओं और गन्धर्वोंने मिलकर; किन्तु अनन्तको अप्सराएँ वहुत कुरूप लगती थीं । ऐसी ही जैसे किरात-किशोरियाँ किसी अभिनयमें देवाङ्गना बननेपर लगेंगी ।

गन्धर्वों और सुरोंको गोप-बालकोंके स्वभावका कोई पता नहीं था । सौन्दर्यमें, सहजतामें तो वे अत्यन्त दूर थे । जैसे कहीं घोर अरण्यके कुरूप बलात् पकड़कर गोप-बालक बनाये गये हों ।

कामदेव अवश्य ही वही मेघश्याम, कमल-लोचन, सुकुमार था । कन्हाईकी अङ्ग-कान्ति पायी है इसने; किन्तु बहुत संकोची निकला यह ।

कन्हाईका अभिनय करते भी वह गोपकन्या बनी अप्सराओंके पदोंपर ही दृष्टि लगाये रहता था। कृष्णका सहज चापल्य उसमें आया ही नहीं।

अवश्य अनन्तको आनन्द आया गायों तथा गोवत्सोंका समूह देखकर। यह तो सुरेन्द्रने पीछे बतलाया कि किंनरोंने यह स्वरूप धारण किया था। बहुत स्वाभाविक व्यवहार था इन पशुओंका और वे श्यामके समीप ही बने रहने को उत्सुक भी दीखते रहे।

अनन्तको आनन्द आया कन्हाईके सुयश-गानमें भी। गन्धर्वोंने, जो गोप-बालक बने थे, जब ताली बजाकर कीर्तन प्रारम्भ किया, अनन्तने केवल इस क्रियामें उनका साथ दिया।

अभिनयकी समाप्ति हुई सायंकाल गायोंको आगे करके गोप-कुमारोंके साथ गो-धूलि-धूसर श्रीअङ्ग श्यामसुन्दर व्रज लौट रहे हैं, इस दृश्यसे। इसमें भी मदनने मुरलीधर बननेका साहस नहीं किया। सब समझते थे कि वेणुकी उस स्वर-लहरीका अभिनय भी असम्भव है। अभिनेताओंके स्वरूप तो संकल्पानुसार परिवर्तित होते जाते थे। गोपकुमारोंके कीर्तनका अभिनय ही अनन्तको प्रभावित करता है, यह सुर समझ गये थे। अतः इसी दृश्यसे उस अभिनयका पटाक्षेप हुआ।

अभिनयकी समाप्तिपर अभिवादन करके सबसे पहले मदन गया, जैसे कोई बालक कुछ चपलता करके बड़ोंके सम्मुखसे भाग खड़ा हो। अप्सराएँ, गन्धर्व भी विदा हुए। किसीने आरम्भसे आशा नहीं की थी कि अनन्त उनकी प्रशंसा करेगा। अनन्तको भी औपचारिकता तो आती नहीं।

'दिनमें आपको सुरोद्यान देखना प्रिय होगा?' सुरेन्द्रने पूछा।

'आपका दिन होता कितना बड़ा है?' अनन्तमें अब भी पृथ्वीके संस्कारोंका लेश था। रात्रि इस अभिनय-दर्शनमें बीत गयी। उसके समयका पता नहीं लगा। लेकिन स्वर्ग अनन्तको कुछ अधिक प्रिय नहीं लग रहा था। उसे न सुधा स्वादिष्ट लगी थी और न संगीतमें उसकी रुचि थी। अप्सराएँ तो उसे अनाकर्षक ही लगी थीं। वह स्वभावसे गोप-किशोर—उसे स्वर्गके श्रृङ्गारमें बहुत कृत्रिमता प्रतीत होती थी। सुर और गन्धर्व, जो सुरेन्द्रके

साथ उसका भी अभिवादन करते थे, वह अमराधिपके लिए चाहे जितना आवश्यक शिष्टाचार लगता हो, अनन्तको आडम्बर ही लगता था।

'पृथ्वीपर मनुष्य जिसे 'उत्तरायण' कहते हैं, वह हमारा एक दिन होता है।" शक्रने कहा—'वहाँका दक्षिणायन यहाँकी रात्रि है।'

'मैं आपका उद्यान देखना चाहूँगा।' अनन्तको भी लगा कि स्वर्गमें उसका मन कहीं लग सकता है तो वह नन्दन-कानन ही होगा। 'किन्तु उससे पूर्व मुझे स्नान करना है। आपके यहाँ कोई सरिता तो होगी?'

'आप सुरसरिमें स्नान करके प्रसन्न होंगे।' जब सुरेन्द्रने कहा, तब अनन्तको स्मरण आया कि भगवती भागीरथी वास्तवमें तो सुर-सरिता हैं। उन त्रिपथगाका पातालमें गया प्रवाह 'भोगवती' कहा जाता है और ऊर्ध्व-लोकमें आयी धारा 'मन्दाकिनी' कहलाती है। इन्द्रने ही कहा—'वे हरिपा-दोद्भवा तो हमारे लिए परम पावनी हैं। सब देवता, गन्धर्वादि उनमें नियमित स्नान करते हैं।'

'मैं कहीं एक ओर स्नान करना चाहूँगा।' अनन्तने दूरसे देख लिया कि भोगलिप्सु देवता स्नानके समय सुरसरिमें भी अप्सराओंके साथ जल-क्रीड़ा ही करते हैं। उसे स्नान करते समय अपने कन्हाईके स्मरणका अभ्यास है। दूसरा कोई उसका इस समय ध्यानाकर्षण करे, यह वह कभी पसंद नहीं करता।

शक्रने फिर भी अनन्तको अकेला नहीं छोड़ा। आज शचीको स्नानमें सुरेन्द्रका साहचर्य नहीं मिला।

स्वर्गमें अनन्तने नन्दन-काननमें ही अधिक समय व्यतीत किया। इन्द्र-ने कल्पतरुकी प्रशंसा की; किन्तु अनन्त केवल एक बार उसके नीचेसे घूम गया। दूसरी बार उसने उधर देखा ही नहीं।

'यह रुक्षपत्र झंखाड़!' अनन्तने सुरेन्द्रका सम्मान रखनेके लिए कहा नहीं; किन्तु उसे अपने व्रजके लता-पादप स्मरण आ रहे थे। कल्पवृक्ष उनके सम्मुख किसी गणनामें तो नहीं आता।

अमरावतीमें अनन्त सबसे अधिक प्रसन्न हुआ देवमाता अदितिके आश्रममें पहुँचकर। उसने जब उन लोकवन्दनीयाके पदोंपर मस्तक रखा, उन वात्सल्यमयीने उसे अङ्कमें ही खींच लिया।

'मेरा छोटा पुत्र उरुक्रम तुम्हारे सखाका ही अंशोद्भव है।' देवमाता गद्गद कण्ठ बोलीं—'इस सम्बन्धसे तुम मेरे पुत्र ही हो।'

'अम्ब !' अनन्त भी भाव-विभोर हुआ। उसने वहीं आहार-ग्रहण किया और अपना अधिकांश समय व्यतीत किया।

'मैं तुम्हें वैवस्वतके समीप छोड़ आऊँगा।' भाद्रमासके सूर्यमण्डलके संचालक विवस्वान् वहीं माताके समीप ही मिल गये। अनन्तको मनुके पास जाना है, यह सुनकर बोले—'मुझे भी अपने इस पुत्रसे मिले बहुत समय हो गया। इसलिये आपको संकोच नहीं करना चाहिये।'

मनुके समीप—

मनुका अयन्मण्डल सप्तर्षियोंके समीप ही है। यह स्वाभाविक ही था कि मनु अपने पिता विवस्वान्‌का स्वागत करने आते। इसमें अनन्तको संकोचका कोई कारण नहीं था; किन्तु उसे संकोच हुआ जब उसका परिचय देते हुए सूर्यने कह दिया—'ये हमारे सम्मान्य हैं।'

'अतिथि तो सबका आदराई होता है।' मनुने विवस्वान्‌के साथ अनन्तका भी अर्चन किया। लेकिन सूर्य बहुत देर वहाँ रुके नहीं। वे अपने पुत्र वैवस्वत मनुसे मिलकर शीघ्र चले गये।

'मैं तो समझता था कि आप ब्रह्मलोक रहते होंगे।' सूर्यके चले जाने-पर अनन्तने मनुसे कहा।

'मैं चाहे जब वहाँ जानेको स्वतन्त्र हूँ।' मनुने बतलाया—'किन्तु मानवलोकके प्रति अपने कर्तव्यके कारण मुझे सप्तर्षियोंके समीप स्थान प्राप्त है। हमारे कर्तव्य बिना सहयोगके तो सम्पन्न नहीं हो सकते।'

'आप यहाँसे धराका कार्य करते हैं?' अनन्तको कुछ आश्चर्य हुआ।

'मानवकी संतान-परम्परा सुरक्षित रहे, यह मेरा मुख्य दायित्व है।' मनुने समझाया—'मेरे साथ सप्तर्षि भी मानव-गोत्रोंका संरक्षण करते हैं और धर्मकी सुरक्षाका ध्यान रखते हैं।'

'कलियुगमें क्या धर्म सुरक्षित रहता है?' अनन्तने पूछा नहीं; किन्तु उसके मनमें यह भी आया—'कलियुगमें वर्ण-संकर हो जानेपर गोत्र-संरक्षण-का क्या अर्थ?'

'मैं या सप्तर्षिगण केवल द्वापरतक धराको प्रत्यक्ष संनिधि दे पाते हैं। वह भी द्वापरमें कादाचित्क हो जाता है। धर्मकी सुरक्षा तो धर्मके स्वामी श्रीहरि ही करनेमें समर्थ हैं। हम तो केवल संकल्पसे मानव-मनको प्रेरित करते हैं। कलियुगमें मनुष्य इतना वहिर्मुख हो जाता है कि वह इन सूक्ष्म प्रेरणाओंको कम ही ग्रहण करता है। फिर हम यह कर भी कितना सकते हैं। हमारी आयु ही कितनी।'

'आपकी आयु ?' अनन्तने पूछ लिया।

'आप अनुमान नहीं कर सकते कि मैं अभी कितना अल्पवयस्क हूँ।' मनुने कहा—'केवल सत्ताइस वर्ष पूरे हुए मुझे और यह अट्ठाइसवाँ चल रहा है।'

'आपकी सम्पूर्णायु ?' अनन्तका अल्हड़पन उससे ऐसे अटपटे प्रश्न भी करा लेता है।

'सामान्यत: सबको अपने वर्षोंसे सौ वर्षकी आयु प्राप्त होती है।' मनुने कहा—'इसमें पृथ्वीके प्राणी अपवाद हैं। उनकी आयु अनिश्चित रहती है और मनुष्यकी आयुमें तो उसके कर्मानुसार ह्रास-वृद्धि भी सम्भव है।'

'मुझे, सप्तर्षियोंको और शक्रको भी आयु तो सौ वर्षकी ही प्राप्त है; किन्तु शक्र स्वयं भोगलोलुप होनेसे अविवेकी होनेके कारण अपनेको अमर मानता है।'

'इन्द्रका क्या होता है ?' अनन्तने पूछा।

'मरनेपर जो सभी प्राणियोंका होता है, वही पुनर्जन्म।' मनुने स्पष्ट किया—'इन्द्र स्वर्गके दिनको अपना दिन माननेके कारण भ्रान्त रहता है। वह अपनेको अमर मान लेता है; क्योंकि हमारे दिनकी उसे अनुभूति ही नहीं होती। वह अपने पदका समय समाप्त होते ही व्याकुल होकर देह-त्याग करता है। भोगलोलुप व्यसनीका दूसरा क्या परिणाम होगा।'

'भगवन् ! आपका दिन कितना बड़ा और आपका वर्ष ?' अनन्तने अब पूछा।

'आप इस प्रकार मुझे सम्बोधित करके संकोचमें डालते हैं। आप मेरे पिता और पितामह सृष्टिकर्ताके भी सम्मान्य हैं।' मनुने बहुत विनम्रता-पूर्वक हाथ जोड़कर सिर झुकाया।

'मानव-वर्षोंसे ८५२० वर्षका हमारा एक दिन होता है और ३६० दिन-कावर्ष।'

'आप जैसे-जैसे सूक्ष्मतामें प्रवेश करते जायँगे, समयकी गति संकुचित होती जायगी।' मनुने कहा--'समय स्थूलताकी अपेक्षासे शीघ्र समाप्त होता है।'

अनन्तको पूछनेकी आवश्यकता नहीं थी; वह स्पष्ट देखता आया था कि समय-निर्धारणका माध्यम भी सबका पृथक्-पृथक् है। धरापर मनुष्य सूर्यके माध्यमसे दिन-रातका निश्चय करते हैं, पितृलोकमें इसका निश्चय शशिकी क्षय-वृद्धिके क्रमसे होता है, स्वर्गमें सूर्यकी उत्तरायण-दक्षिणायन-कक्षा दिन-रात बनाती है। यहाँ मनु-मण्डलमें आकर पता लगा कि मनु और सप्तर्षिगण श्वास-प्रश्वासके क्रम-विशेषको दिन-रातके सर्जकके रूपमें ग्रहण करते हैं।

पृथ्वीपर अनन्तने पढ़ा था कि स्वस्थ, संयमी मनुष्यके श्वासका क्रम तिथियोंके अनुसार चलता है; किन्तु स्वरोदय-शास्त्रके इस विवरणका वह अपवाद था। उसका शरीर जब स्वस्थ रहता था, दिनमें उसकी वाम-नासापुटसे और रात्रिमें शयनके समय दक्षिण नासासे श्वास चलता था। केवल अस्वस्थ होनेपर इसमें विपर्यय होता था। अतः उसे समझनेमें कठिनाई नहीं हुई कि मनु ओर सप्तर्षियोंके साथ भी ऐगा ही कोई क्रम होगा। वे दक्षिण नासारन्ध्रसे श्वास चलनेपर उसे रात्रि मानकर विश्राम करने लगते होंगे।

मनुने ही अनन्तको सप्तर्षियोंके लोक भी दिखला दिये। उसने सब महर्षियोंको सादर प्रणिपात किया। लेकिन मनुलोकमें और सप्तर्षियोंके समीप भी उसका मन लगा नहीं। वह ऊब गया होता यदि उसे केवल मनुलोकमें या किसी ऋषिके समीप सारा दिन रहना पड़ता।

अनन्त न धर्मका जिज्ञासु था और न उसे साधन या तत्त्वज्ञानकी चर्चा प्रिय थी। ऋषियों अथवा मनुके समीप गम्भीर बनकर श्रद्धा-सहित उपदेश-श्रवण अल्पकाल ही किया जा सकता था। लेकिन अनन्तको कोई उपदेश भी नहीं कर रहा था। जो उनके लोकका अतिक्रमण करके आज ही आगे जायगा, जो अनुग्रह करके आतिथ्य-ग्रहण मात्रके लिए आया है, उसका शरीर भले बालक-जैसा बना रहे, उसे उपदेश कोई कैसा करेगा। बिना पूछे उपदेश करनेकी आतुरता तो धरापर भी केवल कलियुगके लोगोंमें होती है। अन्यत्र कहाँ यह उत्सुकता मिलती नहीं।

अनन्तका आतिथ्य सम्पन्न हुआ। यद्यपि मनु एवं सप्तर्षि-लोकोंमें सूक्ष्म-भोग भी नहीं हैं। पितृलोकमें तो वह क्षुधा-पिपासा रहती है, जो पृथ्वी पर मनुष्यके मनको होती है। जैसे आपको कभी कोई विशेष फल, मिठाई या चाट खानेकी इच्छा होती है। यह तीव्र भी हो सकती है। स्वर्गमें यह क्षुधा-पिपासा भी नहीं होती; किन्तु वहाँ भोग होता है। जैसे भूख न लगी हो तो भी कोई प्रिय पदार्थ प्राप्त हो तो उसे खाकर आपको आनन्द होता है। स्वर्गसे आगे यह भोग भी नहीं है। आगे तो केवल तृप्ति है—सात्त्विक आनन्द है।

आपको इस सात्त्विक आनन्दका भी अनुभव है। आप चाहें तो समझ सकते हैं कि अनन्तका मनुने कैसा आतिथ्य किया होगा। ब्रह्मलोकतक यह सात्त्विक आनन्द रहता है, आगे इसकी भी गति नहीं। आगेका आह्लाद शब्दोंमें संकेत भी होनेयोग्य नहीं।

आपकी कोई प्रशंसा करता है तो आपको कैसा लगता है? आप बहुत विनयी, विवेकी व्यक्ति होंगे तो सम्भव है, बुरा लगता हो; किन्तु कोई आपके किसी कार्यकी प्रशंसा करता है तब? बिना किसी स्थूल भोगको माध्यम बनाये आपको इस सुखके स्वादका पता है। इसमेंसे प्रशंसाके शब्दों-को माध्यम बनाना छोड़ दें तो केवल सात्त्विक सुख बच जाता है। मनु और ऋषि भी अपने संकल्पसे ऐसा सात्त्विक स्वागत करनेमें समर्थ थे। अनन्तका यह आतिथ्य उन्होंने किया और यह तो ऐसा आतिथ्य है, जो कर्ताको भी आनन्दित करता है। जैसे सत्पुरुष उचित पात्रको दान करके या सेवा करके प्रसन्न होते हैं।

सत्त्वगुणमें क्रिया नहीं है। धरापर सत्त्व, रज, तम---तीनों गुणोंमें कभी कोई और कभी कोई प्रबल होता है; किन्तु स्वर्गमें तमोगुण अत्यल्प रहता है। वहाँ रजस-मिश्रित सत्त्वके कारण भोग-प्रवृत्ति है। मनु एवं सप्तर्षियोंमें आकर तमोगुण सुप्त हो गया। रजोगुण मानसिक क्रियातक सीमित रहा और वह संकल्प-क्रिया भी धर्मकी साधनाकी।

रात्रि यहाँ आकर निद्राका आवरण तो बन नहीं सकती। इन लोकों-में निद्राका अर्थ ही है संकल्प भी त्यागकर अन्तर्यामी हृषीकेशमें तन्मय

रहना। ठीक शब्दोंमें कहना हो तो यहाँ सविकल्प-'समाधिको ही निद्रा-नाम प्राप्त है।

अनन्तकी कोई अभिरुचि नहीं समाधिमें स्थित होनेमें। अतः वहाँका दिनान्त समीप आया तो उसने मनुसे अनुमति माँगी। मनुको भो यह उचित नहीं लगा कि ऐसे सम्मानित अतिथिको एकाकी भेज दिया जाय। अतः उन्होंने अनुरोध किया—'आपको आपत्ति न हो तो मैं आपके साथ चलकर सृष्टिकर्ता पितामहको प्रणाम कर लूँ। मुझे उनके श्रीचरणोंका दर्शन किये पर्याप्त समय हो गया।'

अनन्तके लिए आपत्तिका कारण नहीं था।

——

सृष्टिकर्ताका साक्षात्कार–

वैवस्वत मनुको अवकाश नहीं था । वे पितामह ब्रह्माजीकी वन्दना करके शीघ्र स्वलोक चले गये; क्योंकि ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनुओंका-- सप्तर्षियों और इन्द्रोंका भी कार्यकाल समाप्त हो जाता है, ब्रह्मलोकमें दो घड़ी रुकनेका भी मनुके लिए बहुत बड़ा अर्थ होता ।

औरोंके समान अनन्त भी सोचता था कि ब्रह्माजी बहुत व्यस्त रहते होंगे; किन्तु उनकी व्यवस्था ऐसी है कि उन्हें कदाचित् ही कुछ करना पड़ता है ।

सृष्टि स्वतःचालित तो है ही, अन्तचालित भी है। जैसे आपके शरीरके समस्त भीतरी यन्त्र स्वतः चालित हैं और उनका नियन्त्रण भी होता रहता है । शरीरका चेतन अर्थात् आप उसके भीतर ही हैं। मानव-निर्मित यन्त्रोंके समान संचालक यन्त्रसे पृथक् बाहर नहीं है ।

संसारमें जब प्राणी शरीर त्यागता है, तब भी उसके सम्बन्धमें सृष्टि-कर्ताको कुछ सोचना या करना नहीं पड़ता। कर्म-विधान ही ऐसा है, जो जीवको कर्मानुसार स्वतः शरीर (योनि) तथा प्रारब्धानुसार भोग देता रहता है ।※

ब्रह्माजीको केवल महाप्रलयके पश्चात् सृष्टिका क्रम प्रारम्भ करना पड़ता है । उनको स्थूल समानता तथा सूक्ष्म विषमता बनाये रखनेका व्यसन है। अतः उन्होंने ऐसी स्वतःचालित पद्धति चला दी कि वह महाप्रलयतक चलती रहेगी। आप स्थूल समानताके कारण सरलतासे मनुष्य, पशु, पक्षी आदिकी पहचान तथा वर्गीकरण कर लेते हैं; किन्तु सूक्ष्म विषमता इतनी कि दो व्यक्तियोंके अँगूठेकी रेखाएँ, केशोंका सूक्ष्म निर्माण सृष्टिसे प्रलय-पर्यन्त एक समान नहीं होता ।

आजके प्राणि-विज्ञानियोंने ऐसी विधि आविष्कृत कर ली है कि किसी-के शरीरकी हड्डीका कोई टुकड़ा या एक केश मिल जाय तो उसकी पूरी

※ प्रारब्ध-विधान तथा कर्मफलकी प्रक्रियाका पूरा वर्णन 'कर्म-रहस्य'में है ।

आकृति अङ्कित कर लेते हैं। इस प्रकार सृष्टिकर्ता पता नहीं, कितने संस्कार प्राणिके बीजमें ही रख देते हैं। यह क्रम भी ऐसा स्वतःचालित है कि मध्य-में हस्तक्षेपके बिना चलता रहता है।

ब्रह्माजीको तो तब ध्यान देना पड़ता है, जब किसीके तप अथवा साधन या अधर्म-बाहुल्यसे उनकी सृष्टिका संतुलन बिगड़ने लगे। ऐसा कम होता है; किन्तु होता है और प्रायः प्रतिदिन होता है; क्योंकि ब्रह्माजीका दिन ही तो पूरा सृष्टिकाल है। उनके एक दिनको ही तो 'कल्प' कहते हैं।

अनन्तको अच्छा लगा ब्रह्मलोक। इसलिये अच्छा लगा कि ब्रह्माजी-को भी केवल हरिकथा-श्रवण अथवा गन्धर्व-अप्सराओंके द्वारा श्रीहरि-यशके गान-श्रवणका व्यसन है। ब्रह्मलोकमें यह संकीर्तन चलता ही रहता है। संकीर्तन विरमित होता है तब, जब देवर्षि नारद कहींसे घूम-घामकर लौटते हैं। ब्रह्माजीके ये नित्य परिव्राजक, पर्यटनप्रिय पुत्र पिताको किसी भगवदव-तारका साक्षात्कार करके आये हों तो वह चरित सुनाते हैं, अथवा शेषशायी, श्वेतद्वीपाधिपति या साकेत-गोलोकमेंसे किसीकी चर्चा करते हैं।

अनन्तको आते ही भगवती वीणापाणिका वात्सल्य प्राप्त हो गया था। वह उनका अनुग्रह-भाजन तो सदासे रहा है; किन्तु उसका स्वभाव ही किसी-का कृतज्ञ होना नहीं। वह अपने कन्हाईके अतिरिक्त दूसरेकी कृपा कहीं देख ही नहीं पाता। कन्हाईके सम्बन्धमें भी कह देता है—'वह अपना है। कृपा तो अन्यपर की जाती है। उसे किसीको कभी उसका कर्तव्य समझाना नहीं पड़ता।'

ब्रह्माजीकी अनन्तने वन्दना की थी। भगवती गायत्री, सावित्री और सरस्वतीकी भी। उसे सबका स्नेह मिला। सब उसे देखकर उल्लसित हुए। सबने स्वागत किया; किन्तु अनन्त सहजभावसे श्रीसरस्वतीका स्नेह स्वीकार करके उनसे ही घुल-मिल सका। ब्रह्माजी तथा उनकी दोनों शक्तियाँ भी उसे श्रद्धेय—सम्मानके योग्य ही लगीं।

'वत्स! तुम मध्याह्नके किंचित् पूर्व यहाँ पहुँचे हो।' ब्रह्माजीने उसे सूचित किया। बात स्पष्ट है, वैवस्वत मनु, जिनके साथ अनन्त ब्रह्मलोक पहुँचा था, सातवें मनु हैं। ब्रह्माजीके उस दिनमें ६ मनु पहले हो चुके थे। 'पूरा एक दिन भी हमें आतिथ्यका तुमने अवसर नहीं दिया।'

'आपका दिन कितना बड़ा ? और आपकी आयु ?' अनन्तने पूछा। पृथ्वीसे प्रस्थानके पश्चात् उसे दिनोंकी जो विभिन्नता प्राप्त होती गयी थी, उसीने यहाँ उत्सुक बनाया था।

'मानवका एक महायुग (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग चारोंके वीतनेका समय-चतुर्युगी) तैंतालीस लाख बीस-सहस्र वर्षकी होती है।' ब्रह्माजीने अनन्तके उस संस्कारके अनुरूप समझाया—'ऐसे सहस्र महायुग व्यतीत होनेपर मेरा एक दिन पूरा होता है। इसीको मर्त्य-धरापर 'कल्प' कहा जाता है। इतनीही बड़ी रात्रि। ऐसे तीन-सौ साठ अहोरात्रका एक वर्ष। आयु तो मेरी सबके समान सौ-वर्षकी ही होगी; किन्तु सबकी आयु उनके अपने दिनमानके अनुसार होती है।'

'इसका अर्थ हुआ कि आपक दिन मानवके तैंतालीस अरब, बीस-करोड़ वर्षका है।' अनन्तने गिना। वैसे वह अच्छा गणितज्ञ कभी रहा नहीं।

'इस प्रकारकी गणना केवल इसी लोकतक चलती है।' भगवती सरस्वतीने सस्मित समझाया—'तुम्हारे सखाकी तो स्थिति कल्पनासे परे है; किन्तु क्षीराब्धिशायीके समीप भी तुम्हें समय-गणनाका दूसरा क्रम प्राप्त होगा।'

'वहाँ क्या क्रम है अम्ब !' अनन्तने पूछ लिया।

'हमारे ब्रह्मलोककी सम्पूर्ण आयु, अर्थात् यहाँके सौ-वर्ष वहाँका एक दिन होता है।' भगवती शारदाने कहा—'इस अवधिको तुम मानव-वर्षोंकी संख्यामें परिवर्तित भी कर लो तो वह संख्या बोलो या सोची कैसे जायगी ?'

अनन्तको संख्याकी अक्षमताका अनुमान तत्काल हो गया। वह कुछ सोचने लगा था; किन्तु ब्रह्माजीने उसे एक और तथ्य स्पष्ट किया—'कालका यह क्रम कोई नित्य नहीं है। महाप्रलयके पश्चात् यह क्रम परिवर्तित भी हो सकता है।'

'कैसा परिवर्तन ?' अनन्त उत्सुक हो उठा।

'सृष्टिसदा एक क्रमसे नहीं होती। अत: कालका क्रम केवल धरासे मनुलोकतक समान रहता है। सब कल्पोंमें समान स्थिति रहती है।' ब्रह्माजीने

कहा—'नित्य तो तुम्हारे सखा हैं। सृष्टि कभी रुद्रसे प्रारम्भ होती है, कभी मुझसे और कभी शेषशायीसे। अतः सृष्टिका जिससे प्रारम्भ होगा, उसका लोक सबसे अन्तमें लय होगा।'

अनन्त कुछ बोला नहीं; किन्तु वह इस उलझनको सुलझा नहीं सका, यह उसकी मुख-मुद्रासे स्पष्ट समझा जा सकता था।

'यह माहेश्वर-सृष्टि है।' ब्रह्माजीने समझाया—'मैं क्षीराब्धिशायीकी नाभि-नालसे प्रकट हुआ और वे महेश्वरसे। अतः इस सृष्टिमें, इस ब्रह्माण्डमें तो यही क्रम है कि ब्रह्मलोककी आयुके सौ वर्ष विष्णुका एक दिन और उनके सौ वर्ष पूरे होनेपर शिवका एक दिन पूरा होगा।'

'इससे भिन्न क्रम भी होगा ?' अनन्तने जिज्ञासा की।

'वत्स ! सम्पूर्ण स्थिति मैं भी समझा नहीं सकता। तुम्हारे सखा अनन्त रूप हैं और उनका ऐश्वर्य किसीकी मन-वाणीका विषय नहीं।' ब्रह्माजीने कहा—'गोलोक, साकेत, परवैकुण्ठादि उनके कितने दिव्य धाम हैं और उनमें किन-किन रूपोंमें वे नित्य क्रीड़ारत हैं, कोई नहीं जानता। उनके उन्मेष-निमेषसे ब्रह्माण्डोंकी और उनके आदि-उद्भवकर्ताकी उत्पत्ति-प्रलय हुआ करती है। जैसे इस ब्रह्माण्डका उद्भव इस बार महेशसे हुआ; किन्तु उन महेशकी भी तो सौ वर्षकी आयु है। उसके पश्चात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड लय हो जायगा। इसका अर्थ है कि तुम्हारे सखाने नयन-निमीलित किये। अब उनके उन्मेषके साथ ब्रह्माण्डके आदिपुरुषका उद्भव होगा। आवश्यक नहीं कि वे आदिपुरुष शिवरूप ही हों, वे क्षीराब्धिशायीरूप भी हो सकते हैं और मेरे रूपके भी। तब उनसे शेष दोनोंमेंसे कोई प्रकट होगा और उससे तीसरा।'

'ब्रह्माण्ड अनन्त हैं। तुम्हारे सखाके उन्मेष-निमेषके साथ उनके आदि-पुरुषोंमें लक्ष-लक्षका उद्भव-विलय होता रहता है।' ब्रह्माजीने अनन्तको गम्भीर देखकर स्वयं कहा—'यह सब मैंने भी श्रुतिके द्वारा ही जाना है।'

'कन्हाई बहुत चपल है।' अनन्त सोच रहा था—'यह अपनी बड़ी-बड़ी पलकोंको क्या इसीलिये झपकाया करता है ?'

अनन्तका आतिथ्य तो ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीको केवल संकल्पसे करना था। उसे संतुष्ट करनेके लिए सृष्टिकर्ताके स्मरण करते ही ब्रह्मलोकके गायक गन्धर्वादि उपस्थित हो गये। जब श्रीकृष्ण-कीर्तन प्रारम्भ हुआ, समय कैसे व्यतीत हो गया, यह किसे स्मरण रह सकता था।

ब्रह्मलोककी सायं-संध्याका अर्थ है—कल्पान्तका समय। ब्रह्माजीने अनन्तसे कहा—'मैं रात्रिमें क्षीराब्धिशायीके उदरमें ही शयन करता हूँ। इस लोक तथा जन, तप आदिके ऋषिगण मुझमें लय प्राप्त करते हैं। मैं अपने इस उद्भव-पद्मपर सोता हूँ तो यह बंद होकर सिकुड़कर श्रीहरिकी नाभीमें लीन हो जाता है। तुम देवर्षि नारदके साथ उनके समीप प्रथम प्रस्थान कर सकते हो।'

—

शेषशायीका सांनिध्य—

सबसे निश्चिन्त सम्भवत: सृष्टिकी सुरक्षा एवं पोषणका दायित्त्व जिसपर है, वह है; क्योंकि वह तो शेषशायी है। आकर्षणकी सत्ताको ही शैया बनाकर सो रहा है।

वह सत्त्वगुणका भी अधिष्ठाता—उसे कुछ करना आवश्यक ही नहीं लगता। सबके भीतर यह अन्तर्यामी होकर स्थित है।

सृष्टिमें ऐसा प्राणी तो सम्भव नहीं, जिसे आकर्षण अरुचिकर हो और विकर्षणसे बचना न चाहता हो। अन्तर्यामी बना वह केवल अन्त:प्रेरणा देता है कि अपने आकर्षण-विकर्षणको विशुद्ध रखो! उसकी प्रेरणाका पालन न करके प्राणी पराङ्‌मुख होता है तो विपत्ति बुलाता है।

क्षीरोदधिशायी वह—समस्त पोषणके समुद्रमें तो वह स्थित ही है। शोभा, सम्पत्ति, सौकुमार्य, सौष्ठवकी अधिष्ठात्री सिंधुसुता श्री उसके चरणोंके स्नेह-संलालनमें सदा लगी रहती हैं। सृष्टिके पालनको और चाहिये भी क्या। यह पालन तो उसका संकल्प परिपूर्ण करता है।

सहस्रफणमौलि शुभ्र श्वेत शान्त शेष। लेकिन शेषका रोष ही संसार-की प्रलय करता है। जो जितना शान्त है, उसका विक्षोभ उतना बड़ा होता है; क्योंकि बिना विशेष कारण-बने वह क्षुब्ध नहीं हुआ करता।

देवर्षि नारदके साथ अनन्तने भी दण्डवत्-प्रणिपात किया। वहाँकी भूमि, भवन और दूसरे सब उपकरण क्षीरोदधिकी तरंगें बनती हैं। पता नहीं लगता कि वे तरंगें प्रवहमान हैं। हमको-आपको-अपने क्षण-क्षण परिवर्तित होते शरीरका पता लगता है? इस परम परिवर्तनशीलतामें जो स्थिर है, वही तो अन्तर्यामी पुरुषोत्तम है। वह यहाँ देहमें और क्षीरोदधिमें भी नित्य दिव्य।

भगवान शेष तो किसीके अभिवादनका वहाँ संकेतसे भी उत्तर नहीं देते; किन्तु भगवती पद्मा अनन्तको देखते ही उठीं। उल्लासपूर्वक उन्होंने उसे अङ्कमें भरा—'वत्स! तुम आये।'

अनन्तने समीप पहुँचकर पुनः प्रणाम किया तो भगवान् अनन्तशायीने उसके मस्तकपर अपना पद्मपाणि रखा। इन क्षणोंमें वहाँ एकत्र ऋषि-मुनियोंका स्तवन शान्त रहा।

यहाँ पहुँचकर अनन्तने अनुभव किया एक अनिर्वचनीय आनन्दका। ब्रह्मलोकतक जो वृत्तिमें किंचित् वहिर्मुखता एवं चाञ्चल्य था, वह सब यहाँ समाप्त हो गया। कुछ देखने-पूछनेको जैसे प्रवृत्ति ही कहीं चली गयी।

सजल-जलद-श्याम, पीताम्बर-परिधान, कौस्तुभकण्ठ उन अकल्पित विस्तीर्ण वपु चतुर्भुज प्रभुके समीप उनके आयुध साकार करबद्ध उपस्थित थे। अनन्त उनका आयुध-स्वरूप भी देख रहा था और उनकी साकार पुरुष-रूपता भी। जैसे आयुधरूप पारदर्शी आवरण हो, जो क्षण-क्षण पुरुषरूपसे प्रकट होकर उसीमें लय हो रहा हो।

'वत्स ! तुम इतने एकाग्र होकर क्या देख रहे हो ?' भगवती श्रीने स्नेहपूर्वक अनन्तके सिर—अलकोंपर हाथ फेरते पूछा। क्योंकि अनन्त स्वतः तो मानो बोलना भूल ही गया था। वह निर्निमेष उन अनन्तशायीके उदर-की ओर ही देख रहा था।

'प्रभुके उदरका यह नाभि-नाल', अनन्तने अब अम्बाके मुखकी ओर भोलेपनसे देखकर अनन्तशायीके उदरकी ओर संकेत किया—'यह कभी संकुचित होता है, कभी विस्तीर्ण। इतने अल्प समयमें इसमें परिवर्तन होता है।'

'तुम यहाँ ब्रह्मलोकसे ही तो आये हो।' भगवती लक्ष्मीने कहा—'कमलोद्भवने तुमको बतलाया नहीं कि उनका सम्पूर्ण जीवन, अर्थात् उनके सौ-वर्ष हमारा एक दिन होता है ?'

'यह तो बतलाया था अम्ब !' अनन्त अभी कुछ समझ नहीं सका था 'लेकिन परमप्रभुका यह नाभि-माल ?'

'पद्मसम्भव जब दिनान्तमें शयन करते हैं तो यह संकुचित हो जाता है और जब वे जागते हैं—विस्तीर्ण बन जाता है।' भगवतीने समझाया।

ब्रह्माजीकी सौ-वर्षकी आयु। उनकी पूरी आयुमें तीन सहस्र छः सौ दिन हुए। यह पूरी आयु जहाँ एक दिन है, वहाँ यदि पृथ्वीके समान ही

घण्टे-मिनट मान लें तो भगवान् अनन्तशायीका नाभि-नाल एक घण्टेमें तीन-सौ बार संकुचित होगा और इतनी ही बार विकसित होगा। अर्थात् एक मिनटमें पाँच बार। अनन्तने इतना हिसाब लगाया हो या न लगाया हो, वह उस नाभि-नालके आकुञ्चन-प्रसारणकी त्वरासे आकर्षित हुआ था।

'अम्ब ! आप भी दिनान्तमें सोती हैं ?' अनन्तने अकस्मात् पूछ लिया।

'नित्य-जागरूक तो तुम्हारे सखा ही हैं। वे ही आनन्दघन हैं।' श्रीने सलज्ज भावसे अनन्तशायीकी ओर देखा था।

'वत्स ! यहाँ मेरा यह रूप और तुम्हारी ये अम्बा भी नित्य नहीं हैं। यह तो ऐसा रूप है, जैसे दर्पणमें प्रतिच्छाया पड़ रही हो।' उन परमपुरुषने समझाया—'यह रूप तो एक ब्रह्माण्डके पालनका माध्यम है। यही स्थिति तुम्हें साम्बशिवके समीप भी मिलेगी। तुम सरलतासे समझ सकते हो कि सृष्टिकर्ताका कार्य पहले समाप्त होता है। लेकिन संहारसे पूर्व पालनकर्ताका भी दायित्व समाप्त हो जाता है; अतः सबसे अन्तमें शिव अपने संहारक रूप-का उपसंहार करते हैं।'

'अम्बाका और आपका भी यह रूप प्रतिबिम्ब है तो इसका बिम्ब ?' अनन्तकी जिज्ञासा उचित थी।

'जैसे तुम्हारे सखाका स्वरूप है, वैसे ही यह मेरा रूप और साम्ब-शिवका रूप भी है और ये नित्य रूप परस्पर अभिन्न हैं।' अनन्तशायीने कहा—'तुम हमारे उन नित्य रूपोंसे परिचित हो। उन्हींके सादृश्यके कारण तुम इन रूपोंसे भी वैसा ही व्यवहार करते हो; किन्तु उन रूपोंका ठीक निरूपण मैं भी कर नहीं सकता। केवल अपनी स्थिति सूचित कर सकता हूँ और वह भी मात्र संकेतसे। परम स्वरूप जैसे सूर्य हो और हम एक-एक ब्रह्माण्डके अधिष्ठाता उसकी किरणें।'

'ब्रह्माजीकी भी यही स्थिति होगी ?' अनन्तने पूछा नहीं, उसके मनमें बात उठी और उसने देवर्षि नारदकी ओर देख लिया।

'ब्रह्मा सार्ष्टि-मोक्षप्राप्त जीव भी बन सकता है। जीवके परमोत्कर्षकी यही सीमा है; किन्तु सदा जीव ही ब्रह्मा नहीं होता। अनेक बार तुम्हारे

सखा अपना अंश सृष्टिकर्ताके रूपमें प्रकट करते हैं।' भगवान् शेषशायीने सूचित किया—'देवर्षि तो केवल ब्रह्मासे व्यक्त हो गये; किन्तु ये तुम्हारे सर्वेश्वर सखाके अपने परिकर हैं। अतः तुम्हारे गोलोकतक इनकी गति है और सृष्टिमें ये प्रायः मेरे मनका प्रतिनिधित्व किया करते हैं।'

'कन्हाई चपल है और नटखट भी।' अनन्त सोच रहा था—'कुछ अनुमान कोई नहीं कर सकता कि कब वह क्या करेगा; किन्तु अद्‌भुत तो नहीं है। मुझसे तो कुछ छिपाता नहीं।'

अनन्तशायीके समीप ऋषि-मुनि आते ही रहते थे। अनन्तने देखा कि अनवरत स्तुतियाँ चलती रहती हैं वहाँ। सचमुच जहाँतक मायाका विस्तार है, सभी अभावग्रस्त हैं। वे श्रीपतिकी ही तो स्तुति करेंगे।

'अम्ब ! प्रभु अवतार भी तो लेते हैं धरापर ?' अनन्तको शेषशायीसे कुछ पूछनेमें किंचित् संकोचका अनुभव होता था, अतः उसने सिंधुसुताके श्रवणोंके समीप मुख ले जाकर धीरेसे पूछा।

'लेते तो हैं। जैसे तुम्हारे सखा नित्य गोलोकविहारी रहते भी कभी व्रजमें कुञ्जविहारी या गिरिधारी बन जाते हैं।' श्रीने सस्मित कहा—'इनके भी अनेक रूप हैं और वे भी सृष्टिमें कल्पपर्यन्त नित्य रहते हैं। उनके भी अपने-अपने लोक हैं। सुर संत्रस्त होते हैं तो यहाँ उनकी स्तुति पहुँचती है। तब इन प्रभुके संकल्पसे कभी किसी रूपका संसारमें आविर्भाव हो जाता है।

अवतारोंमें जन्म-मरण तो है नहीं। उनका आविर्भाव-तिरोभाव ही होता है, यह अनन्तको पूछना नहीं था।

'जैसे अवतारोंका स्वरूप सुनिश्चित है, उनका अवतार-काल भी निश्चित है।' भगवती लक्ष्मीने ही कहा—'सृष्टिमें अनिश्चित कुछ भी नहीं है, सब पूर्व-नियोजित ही सम्पन्न होता है; किन्तु तुम्हारे सखापर तो कोई नियन्त्रण चलता नहीं। वे अपने किसी परिपूर्ण रूपसे, किसी परात्पर धामसे पृथ्वीपर स्वेच्छानुसार आविर्भूत होते हैं एवं अपनी लोकपावनी लीलाका विस्तार करते हैं। केवल इसलिये कि उसके स्मरण-चिन्तन-गायनसे प्राणी उनके पाद-पल्लवोंतक पहुँच सकें। ऐसे पूर्णावतारोंका ही समय अनिश्चित

रहता है; किन्तु वे दयामय प्रायः सृष्टिकर्ताके प्रत्येक दिन—प्रत्येक कल्पमें पधारते हैं।'

'इसीलिये कन्हाईको लुका-छिपीके खेल अधिक प्रिय हैं।' अनन्तने अपने ढंगसे जो समाधान कर लिया; उसको भी अनाधार नहीं कहा जा सकता। गोलोकका जब निमेष भी शिवकी सम्पूर्ण आयु है, संसारमें कन्हाई कभी आवे तो गोलोकमें पता लगेगा ?

'वत्स ! देवर्षि नारद ही तुम्हें साम्बशिवके समीप ले जायँगे।' अनन्तशायी तो अपनी शेष-शैयासे उठा नहीं करते और उनके दिवसकी संध्या होनेको आयी थी। अनन्त इस लोकमें तो रात्रि-विश्राम करनेवाला नहीं था। उसे तो एक-से-दूसरे स्थानमें जानेमें जो अल्प क्षण लगते थे, उसमें अबतक कहीं रात्रि ही प्राप्त नहीं हुई थी। उसने श्री और श्रीपतिको प्रणाम किया।

साम्बशिवका स्नेह-

अब्धिशायीके समीप अनन्तको शान्ति थी तो साम्बशिवके सम्मुख उच्छलित उल्लास था। भू-कैलाशकी बात नहीं कर रहा हूँ, दिव्य कैलाशके समस्त क्षेत्रमें भूत-प्रेतोंपर केवल नन्दीश्वरका या भैरवका नियन्त्रण रहता है। आज तो उन्हें उत्सव मनानेकी अनुमति मिल गयी थी।

भूत-प्रेतोंका उत्सव; किन्तु वे कोई भुवर्लोकके यन्त्रणा-प्राप्त प्राणी थे। वे सब शिवगण, केवल उनकी आकृतियाँ तथा स्वभाव अटपटे थे। यह भी इसलिये कि उनको तथा उनकी क्रीड़ाको देखकर अम्बिका हँसें, प्रसन्न हों।

अन्ततः वे प्रलयंकर प्रभुके पार्षद हैं। उनका शील-स्वभाव, स्वरूप अपने स्वामीके अनुरूप तो होगा ही; किन्तु आज उनका अनन्दोत्सव था। कोई नाच रहा था, कोई गा रहा था और कोई कुछ बजा रहा था; भले दो नर-कपाल ही टकरा रहा हो। वृहत्काय गोल-मटोल कूष्माण्ड लुढ़क रहे थे।

अनन्तके आगमनका यह महोत्सव मनाया जा रहा था और अनन्त तो अम्बिका सिंहवाहिनीके अङ्कमें बैठा, शिशु बना स्वयं भी ताली बजानेमें लगा था।

देवर्षि नारदजीने आशुतोषकी चरण-वन्दना की तो उन्हें अङ्कमाल मिली। उन्होंने देखा ही नहीं कि कब अनन्त इतना छोटा शिशु हुआ और उसे अम्बिकाने अङ्कमें उठा लिया। देवर्षिका ध्यान तो तब गया, जब उन्हें अङ्कमाल देकर प्रभु चन्द्रमौलि स्नेहपूर्वक अनन्तके सिरपर कर फिराने लगे।

'हम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे।' प्रभुने ही उस अम्बिकाके अङ्कस्थ बालकसे कहा—'तुम्हारी ये अम्बा बहुत उत्सुक णीं और वीरभद्रने तुम्हारे आमोदके लिए इस उत्सवका आयोजन किया।'

भूत-प्रेतोंका आकार चाहे जितना विकट हो, उनके ताल-स्वर एवं नृत्यमें कहीं कोई त्रुटि नहीं थी। वे अपने आकारके अनुरूप विकट राग एवं

नृत्यको अपनाये थे। अनन्तको भी कोमल स्वरोंमें रुचि नहीं है। वह बहुत प्रसन्न था।

अनन्तको क्षीराब्धिमें शान्त, संयमित बैठना पड़ा था। उस घनीभूत सात्त्विकतामें वह ऊबा तो नहीं था; किन्तु उसे यहाँ आकर पता लगा कि वह स्थिति उसके अनुकूल नहीं थी। यद्यपि यह स्थिति भी उसके अनुरूप नहीं थी। वह विकटाकार भूत-प्रेतोंके मध्य न दौड़ सकता था, न इनके साथ क्रीड़ा कर सकता था; किन्तु कुछ कालके लिए उसे उत्सव आनन्ददायी लग रहा था।

'अम्ब ! ये श्रान्त नहीं होते ?' अनन्तने देखा कि भूत-प्रेतोंकी उछल-कूदमें तनिक भी शिथिलता नहीं आ रही है।

'प्रभुके साथ मैं भी तमोगुणकी अधिष्ठात्री तो हूँ।' अम्बिकाने स्नेह-पूर्वक कहा—'किन्तु हमारे आश्रितोंको तमस् अभिभूत नहीं करता। अतः गण स्वयं न श्रान्त होते, न उनमें तमस्का अन्य कोई दोष आता। समयपर सृष्टिमें वे विनाशके माध्यमोंका विस्तार करते हैं।'

'प्रभु प्रलयंकर हैं और आप भी संहार करनेवाली हैं ?' अनन्तको आश्चर्य था कि ये स्नेहमयी संहारिका कैसे हो सकती हैं।

'मृत्यु तो प्राणी अपने प्रमादसे आमन्त्रित करता है।' अम्बिकाने कहा—'जीवनके साथ मृत्यु लगी है। असंयम और असाधन क्षण-क्षण क्षीण करते रहते हैं शरीरोंकी सत्ता और जो शीर्ण हो रहा है, वह अन्ततः समाप्त तो होगा ही।'

मैं तो प्रलयकी बात पूछ रहा हूँ।' अनन्त शिशुके समान ही मचला।

'शरीरके समान संसारकी भी स्थिति है।' अम्बिकाने कहा—'व्यष्टि और समष्टिमें केवल विस्तारका ही अन्तर है। तुमने क्षीराब्धिमें सहस्रशीर्षा शेषको देखा है ?'

'वे अत्यन्त शान्त-स्थिर थे।' अनन्त बीचमें ही बोल पड़ा।

'जो जितना शान्त दीखता है, उसका विक्षोभ उतना ही विस्फोटक होता है।' अम्बिका हँस पड़ीं—'उन शेषकी रोषाग्निसे ही एकादश रुद्र त्रिशूल

लिये उत्पन्न होते हैं और शेषकी रोषग्नि ही ब्रह्माण्डको दग्ध कर देती है। मुझे और प्रभुको तो केवल निमित्त बनना पड़ता है। हम ताण्डव करते हैं।'

'ताण्डव तो ये भूत-प्रेत अब भी कर रहे हैं।' अनन्तने सम्मुख देखकर कहा—'वीरभद्र और भैरव भी ताण्डव कर रहे हैं।'

'यह तो आनन्द-ताण्डव है अपने प्रिय अतिथिको आमोद-प्रदान करनेके लिए।' सहसा अम्बाका स्वर शिथिल हो गया—'तुम केवल एक दिनके लिए तो आये हो।'

'आप मेरे साथ कन्हाईके समीप नहीं चलेंगीं ?' अनन्तने अनुरोध किया—'मैं प्रभुसे प्रस्ताव करूँ ?'

'तुम यहाँ आ गये, यही हमारा अहोभाग्य !' अम्बाने अनन्तको हृदयसे लगा लिया—'तुम्हें आकृतिसाम्यसे भ्रम हो रहा है। मैं और प्रभु भी अंश हैं। मैं भगवती त्रिपुराके श्रीअङ्गोंकी कान्ति-समुद्भूता हूँ और प्रभु परम महेश्वरके। मुझे ज्ञात है कि तुम उनके स्नेहभाजन हो। तुम अपने सखाके समीप पहुँचोगे तो वे वहाँ तुम्हारा स्वागत करेंगे। तुम्हारे सखा ही उनके स्वरूपोंमें भी हैं। यहाँ तो हम इस ब्रह्माण्डके विनाशाधिष्ठाता होकर वास करते हैं। अपनी सम्पूर्ण आयुतक हमें यहाँ रहना है। उसमें आजका दिन तुम्हारे आनेसे धन्य हो गया।'

'बाबा ! आपका यह दिन ?' अनन्तको बहुत-कुछ भगवान् विष्णुने समझा दिया था; किन्तु बालक बाल-चापल्य तो करेगा ही। उसने विश्वनाथ प्रभुसे पूछ लिया।

'तुम क्षीराब्धिशायीके समीपसे आये हो। उनकी सौ-वर्षकी सम्पूर्णायु हमारा एक दिन होता है।' भगवान् भूतनाथ बोले—'उतनी ही बड़ी निशा और तीस अहोरात्रिका मास। बारह मासका वर्ष। हमें भी अपने प्रमाणसे सौ-वर्षकी आयु प्राप्त है।'

'आपकी भी सम्पूर्णायु किसीका दिन होता होगा ?' अनन्तने जिज्ञासा की। अबतक जो क्रम उसे मिलता आया, उसके कारण यह प्रश्न स्वाभाविक उठना था।

'आगे ऐसा कोई क्रम नहीं है। मुझ रुद्रके साथ ब्रह्माण्डकी समाप्ति हो जाती है। रुद्रकी मृत्यु ही महाप्रलय है। प्रकृति साम्यावस्थामें स्थित हो जाती है।' आशुतोष प्रभुने अब स्मितपूर्वक कहा—'आगेका समस्त ऐश्वर्य तुम्हारे सखाका। वे पलक झपकाते हैं तो असंख्य रुद्र मर जाते हैं, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी प्रलय हो जाती है और वे पलक उठाते हैं तो अनन्त रुद्र उत्पन्न हो जाते हैं, असंख्य ब्रह्माण्ड बन जाते हैं।'

कन्हाई कितना नन्हा तो है।' अनन्त सोचने लगा—'वह अत्यन्त सुकुमार और भोला है। उसे जैसे ऋषि-मुनि बहका देते हैं, बाबा आज मुझे बहकाने लगे हैं क्या ?'

'तुम समझ नहीं पा रहे हो कि तुम्हारे सखा सचमुच कितने छोटे हैं।' भगवान् धूर्जटिने अपनी जटाका एक केश दिखलाया—'वे इस केशकी नोकसे भी सहस्रों-गुना सूक्ष्म हैं और इसमें भी प्रविष्ट हैं।'

'कन्हाई इतना छोटा है ?' अनन्तको आनन्द आ गया। वह ताली बजाकर हँसा—'मैं उसे अपनी मुट्ठीमें बंद कर लूँगा।'

'तुम्हारी मुट्ठीमें वे हैं।' सदाशिवने भी सस्मित कहा।

'है ? वह नटखट आ गया इसमें ? अनन्तने मुट्ठो खोलकर देखा।

'इस प्रकार वे नहीं दीखते। उनको देखना तुम जानते हो। तुम्हारा प्रेम ही उन्हें प्रत्यक्ष और परवश भी करता है।' नीलकण्ठ त्रिलोचन प्रभुने अपनी व्याख्या पूरी की—'सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भी वे ही हैं और महान्-से-महत्तम भी वे ही हैं। इतने बृहत् कि उनसे बाहर कुछ बचता ही नहीं।'

'आप तो वेदान्तकी बात करने लगे। यह संब तो ब्रह्मका वर्णन है।' अनन्तने मुख बनाया।

'तुम्हारे सखा ही ब्रह्म भी हैं।' सदाशिवने हँसकर कह दिया; किन्तु व्याख्या उन्हें भी अनावश्यक लगी।

'कन्हाई नटखट है। वह कुछ भी बन सकता है।' अनन्त अपने ढंगसे अपना समाधान करेगा—'उसका कुछ ठिकाना नहीं। ब्रह्म भी बना हो तो बड़ी बात नहीं है।'

इस सबसे अनन्तको कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसके लिए कन्हाई अपना है। वह कैसा भी और कुछ भी बने, अपना ही रहेगा।

'तुम तो कुछ सोचने लगे।' अम्बाने अनन्तके कपोल थपथपाये-- 'केवल एक दिनको आये हो। तुम्हें यह भूत-प्रेतोंका नृत्य-गान प्रिय न लगे तो मैं कोई और आयोजन करूँ।'

उन जगद्धात्रीका संकल्प सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बना सकता है। उन्हें कोई भी आयोजन करनेमें समय या सामग्रीकी अपेक्षा तो है नहीं; किन्तु अनन्त-को ही किसी अन्य आयोजनकी अपेक्षा नहीं थी। वह फिर वहाँ चल रहे अटपटे आयोजनमें रुचि लेने लगा और ताली बजाने लगा।

प्रदोषकाल महेश्वर एवं महाकालोके नृत्यका तथा भ्रमणका समय होता है। उससे पहले ही अनन्त उन अम्बाके अङ्कसे उतरा। उसने साम्ब-शिवके पदोंमें मस्तक रखा। उनका आशीर्वाद मिला उसे। देवर्षि भी वीणा उठाकर साम्बशिवसे विदा लेकर अनन्तके साथ हुए।

——

उपसंहार

'आप अपने सखाको सँभालिये !' देवर्षि नारद अनन्तको साथ लेकर गोलोक पहुँचे तो श्याम स्वयं द्वारपर समुपस्थित मिला। उसने देवर्षिको झटपट प्रणाम किया और फिर दोनों आलिङ्गनबद्ध हो गये।

'कौन-से सखाको आप साथ लाये हैं।' कन्हाईने इधर-उधर देखकर ऐसे पूछा, जैसे अनन्तको वह कहींसे आया मानता ही न हो।

'इन अनन्तको।' देवर्षि भी समझ तो गये ही कि उनसे कहीं भूल हो रही है।

'अनन्त कहाँ है ?' कन्हाईने चौंककर फिर इधर-उधर देखा।

'जिनको आप अभीतक अङ्कमाल दिये खड़े हैं, वे कौन हैं ?' देवर्षिने पूछ लिया।

'यह तो भद्र है।' अब श्यामने सहज भावसे कहा—'यह सखा कहाँ है। यह तो अग्रज है। दाऊ दादासे दो मास छोटा; किन्तु मुझसे तो बड़ा है। मुझे तो यही सँभालता रहता है।'

'तू अनन्त कबसे बन गया ?' अब भुजाओंके बन्धन पृथक् करके कन्हाई सटकर खड़ा हो गया और भद्रके मुखको बहुत ध्यानसे ऐसे देखता, जैसे जान लेना चाहता हो कि कुछ परिवर्तन तो नहीं हुआ। पूछने लगा—'तू अब मुझे नहीं सँभालेगा ?'

'तू ऐसे सहज छुट्टी नहीं पा सकता।' भद्र हँसकर बोला—'बाबा, मैया और दादा भी मुझसे ही तुझे सँभालनेको कहते रहते हैं। तू ऊधम करेगा तो कोई तुझे रोकने-डाँटनेवाला तो चाहिये ही।'

कन्हाईने अब देवर्षिकी ओर ऐसे देखा, जैसे दृष्टिसे ही पूछ रहा हो—'आप क्या कहते हैं ? इस भद्रको आप रोक पावेंगे ?'

'आप दोनों मुझपर दया करें।' देवर्षिने हाथ जोड़े—'आपका स्नेह ही मेरा स्पृहणीय है। मैं ब्रह्मलोकसे इनके साथ रहकर भी इनसे अपरिचित

रह गया, यह आश्चर्यकी बात नहीं है। आपको और आपके स्वजनोंको पहचान लिया जाय, यही आश्चर्यकी और अहोभाग्यकी बात है।'

देवर्षि तो अनुमति लेकर वहींसे विदा हो गये। उन्हें तो पर्यटन प्रिय है। कहीं बसनेकी बात उनके सम्बन्धमें व्यर्थ है। वे कहीं बैठते भी हैं तो केवल दो घड़ीको और वह भी कोई आवश्यक बात हो तब। यह तो अनन्तके साथका, सम्पर्कका प्रभाव होगा कि उसके साथ वे क्षीरोदधिमें और कैलासमें भी पूरे दिनके लगभग रुके रहे थे।

देवर्षिको दक्षका शाप है कि वे कहीं दो घड़ीसे अधिक नहीं रुक सकेंगे; इस तथ्यको बल देना व्यर्थ है। दक्षने शाप दिया था त्रिलोकीके लिए। ब्रह्मलोक ही त्रिलोकीसे परे हो जाता है, उससे ऊर्ध्वलोकोंतक तो शापका प्रवेश कैसे सम्भव है ?

देवर्षि समर्थ हैं। वे चाहे जब द्वारका या अयोध्यामें रमे रहते थे। शापको उन्होंने बहाना बनाया है अपने पर्यटन-व्यसनका। इसलिये बहाना कि उनसे रुकनेका आग्रह कोई न कर सके।

'कनूँ! मैं स्वप्नमें अनन्त हो गया था।' अब आनन्तने श्यामसे कहा—'बहुत विचित्र स्वप्न देखा मैंने। तुझे बतलाऊँ ?'

'अब तू खड़े-खड़े भी सोने लगा है।' श्यामने उलाहना दिया—'चल, मैं मैयासे कहता हूँ कि वह तेरा कोई उपचार करे।'

'मैं कोई रुग्ण हूँ ?' अनन्त झल्लाया—'मैं खड़ा कहाँ था। मैं तो जाने कबसे चल रहा था। कितने लोकोंमें तो मैं घूम आया। तूने देखा तो है कि मैं देवर्षिके साथ आया हूँ। वे अभी बहुत दूर नहीं गये होंगे। उन्हें पुकार।'

'देवर्षि दो क्षणको आये तो तू मुझसे झगड़ने लगा है।' नन्दनन्दनने मुख बनाया—'उन्हें फिर बुलाकर कोई कलह कराना है। उन्हें तो कहीं भी विवाद उत्पन्न करनेमें आनन्द आता है।'

'मैं तेरे समीप उनके साथ नहीं आया ?' भद्रको आश्चर्य था कि श्याम उसका आगमन ही अस्वीकार कर रहा है।

'तू गया कहाँ था कि वहाँसे आयेगा।' मयूर-मुकुटी बड़े विश्वास-पूर्वक दृढ़ स्वरमें कह रहा था। इस प्रकारका परिहास तो वह करता नहीं।

'तब देवर्षिके साथ कौन आया ? वे किसे अनन्त कह रहे थे ?' भद्र झल्लाया नहीं, वह उलझनमें पड़ गया था। आपको इस उलझनका कुछ सुलझाव दीखता है ? मैया यशोदाका लाल भद्रसे झूठ नहीं कहा करता, यह तथ्य भूलिये मत।

'देवर्षिके साथ कौन आता ? तुझे इतना भी पता नहीं कि वे एकांकी घूमने के व्यसनी हैं। क्या हो गया कि वे भूलसे तुझे अनन्त कहने लगे थे ? इन अवधूत बाबाजी लोगोंकी बातोंमें मत पड़ाकर। देवर्षिने कोई मन्त्र पढ़ा होगा तुझपर तो मैया उसका भी उपचार करा लेगी। तू मैयाके पास चल।'

'मुझपर किसीका मन्त्र-तन्त्र नहीं चला करता। तू मुझे बहका मत। तू ही बता, किसीका कोई मन्त्र चलेगा मुझपर ?' भद्र झल्लाकर खड़ा हो गया।

'नहीं चलेगा।' श्याम इस सत्यको अस्वीकार नहीं कर सकता था। 'तुझपर मन्त्र चलाने जायगा, उसे दाऊदादा मारे बिना नहीं छोड़ सकता।'

'तब तू ऐसी झटपटी बात क्यों करता है ?' भद्रने कन्हाईका वाम कर पकड़ा और ठीक सम्मुख खड़ा हो गया।

'तू ही तो कहता है कि तू अनन्त बन गया था।' श्यामने सहज कहा—'तू यहाँ मेरे साथ ही खड़ा था। तब अनन्त कब बन गया ? देवर्षिको दौड़ते आनेका व्यसन है। वे कहींसे दौड़े-दौड़े आये और शीघ्रतामें तुझे पहचानना भूल गये। अब अटपटी बात तू करता है या मैं ?'

'मैंने सपना तो देखा था कि मैं अनन्त हो गया हूँ।' भद्र गम्भीर हो गया—'मैंने अनेक लोकोंकी यात्रा की और अन्तमें देवर्षिके साथ यहाँ आया।'

'मैं इसीलिये कहता हूँ कि तू झटपट मैयाके पास चल ! वह तेरा उपचार करेगी।' अब श्यामने हाथ पकड़ा—'अभी चल ! तू खड़े-खड़े सोने लगा है।'

मैया उपचार तो करेगी। यह कन्हाई उसे कुछ कह देगा तो वह भद्रकी बात सुनेगी ही नहीं। वह तो किसीके भी कह देनेपर श्यामका ही नहीं, दाऊ दादाका भी उपचार करने लगती है। दाऊको भी राई-नमक उतारने लगती है और उसे भी कुछ औषधि देनेकी चिन्तामें पड़ जाती है। मैया ऐसे समय किसीकी सुनती नहीं। महर्षि शाण्डिल्य और

भगवती पूर्णमासीने कह दिया—'दाऊके स्मरणसे सब मन्त्र, अभिचार, टोटके व्यर्थ हो जाते हैं। दाऊकी छायासे भी रोग दूर भागते हैं।' लेकिन मैया उनको प्रत्युत्तर भले न दे, मानती नहीं है। गोपियाँ भले हँसती रहें, वह तो कह देती है—'दाऊ भी तो बालक ही है।'

कन्हाई कुछ कह देगा तो मैया पता नहीं, क्या-क्या खिलावेगी और क्या-क्या टोटके करेगी। मैयाको मना नहीं किया जा सकता। दाऊको भी चुपचाप मैया कहे सो सब करना पड़ता है। यह श्याम नटखट है। हठी है। इसीको समझाना पड़ेगा।

भद्रको औषधिसे भी अरुचि है और टोटकोंसे तो उसे चिढ़ है। अभी उसका स्वयं भी समाधान नहीं हुआ है। कन्हाई कहता है कि वह कहीं गया नहीं था। उसे लगता है कि वह अनेक लोकोंमें घूमकर आया है। कन्हाईका स्वर परिहासका तो है नहीं।

क्या सचमुच वह खड़े-खड़े सो गया था? क्या सचमुच उसने स्वप्न ही देखा है?—इस बातका निर्णय होना चाहिये। खड़े-खड़े सोना तो कोई अच्छी बात नहीं है।

'कनूँ! मैं तेरे साथ खड़ा कितनी देरको सोया था?' भद्रने स्नेहसे श्यामके कन्धे पर हाथ रखा और बहुत प्यारसे पूछा—'मुझे सपना देखनेमें कितना समय लगा होगा?'

आपका भी अनुभव है कि स्वप्नमें वर्षों व्यतीत हो गये ऐसा लगता है; किन्तु जागनेपर पता लगता है कि वास्तविक समय तो कुछ मिनट ही व्यतीत हुआ है। अतः भद्रका प्रश्न अकारण आप नहीं कह सकते।

'इतना' कन्हाईने अपनी बड़ी-बड़ी पलकें शीघ्रतापूर्वक झपकाकर खोल दीं।

'बस!' भद्र ताली बजाकर हँस पड़ा—'भला इसमें उपचारकी बात कहाँ आती है।'

कन्हाई भी हँस पड़ा।

❋ समाप्त ❋

श्रीकृष्ण - संदेश

[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-संदेशका वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है।

'श्रीकृष्ण-संदेश' प्रतिमास ६४ पृष्ठ सुरुचिपूर्ण पाठ्य-सामग्री देता है।

वार्षिक शुल्क— १०) रुपया।

आजीवन शुल्क— १५१) रुपया।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—

श्रीकृष्ण-सन्देश

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंस्थान

मथुरा-२८१००१

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"